सत्याग्रह आश्रमका अितिहास

लेखक गांधीजी; अनु० रामनारायण चौधरी

पुस्तककी प्रस्तावनामें काकासाहब लिखते हैं: 'अिस पुस्तकको भूतकालके अेक बोधप्रद प्रयोगके बयानकी हैसियतसे नहीं देखना चाहिये, बल्कि राष्ट्रपिताके द्वारा आनेवाले पांच सौ वर्षोंकी राष्ट्रीय साधनाके लिअे किये गये अेक स्फूर्तिदायक प्रयोगके रूपमें अिसका अध्ययन करके संकल्पबल प्राप्त करनेके लिअे अिस अितिहासका अध्ययन होना चाहिये।"

की० १–४–० डाकखर्च ०–५–०

अस्पृश्यता

लेखक : गांधीजी; संपा० भारतन् कुमारप्पा

अिस छोटीसी पुस्तिकामें अस्पृश्यता-संबंधी गांधीजीके विचारोंका सार आ जाता है। गांधीजीने अपने जीवनमें अस्पृश्यताका जड़मूलसे अन्त करनेका यथाशक्ति प्रयत्न किया और अुसमें बड़ी सफलता भी प्राप्त की। आशा है यह संग्रह अिस अुदात्त ध्येयकी सिद्धिमें लगे हुअे सेवकोंके लिअे बहुत अुपयोगी सिद्ध होगा।

की० ०–३–० डाकखर्च ०–२–०

हरिजनसेवकोंके लिअे

लेखक : गांधीजी; संपा० भारतन् कुमारप्पा

यह संग्रह अेक अैसी पुस्तिकाकी आवश्यक मांगके अुत्तरमें तैयार किया गया है, जो अस्पृश्यता-निवारणके कार्यमें लगे हुअे सेवकोंके हाथमें रखी जा सके और जिसमें अिस विषय पर गांधीजीके विचार अत्यन्त संक्षेपमें मिल सकें कि यह कार्य किस ढंगसे किया जाय।

की० ०–६–० डाकखर्च ०–३–०

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

पहला भाग

आश्रमवासीके बाह्य आचार

लेखक
जुगतराम दवे

अनुवादक
रामनारायण चौधरी

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद

आदिवचन

भाअी जुगतरामकी 'आश्रमी शिक्षा' नामक पुस्तकके कुछ प्रकरण मैं पढ़ गया हूं। अुनकी भाषा तो सरल और सुन्दर है ही। गांवके लोग आसानीसे समझ सकें अैसी वह भाषा है। आश्रम-जीवनसे सम्बंध रखनेवाली छोटी-बड़ी सभी चीजोंका लेखकने सुन्दर ढंगसे वर्णन किया है। अुन्होंने बताया है कि आश्रम-जीवन सादा है, परन्तु अुसमें सच्चा रस और कला भरी हुअी है। यह परीक्षा सही है या गलत, यह तो पाठक सब लेख पढ़ कर देख लें।

पूना, १७–३–'४६ मो० क० गांधी

अर्पण

आश्रम-बन्धु स्वर्गीय गोरधन बाबाको
जिनकी मीठी जीवन-सुगन्ध हममें से
अनेककी आत्म-रचना पर किसी अगम्य रीतिसे
अपना असर छोड़ गयी है।

अनुक्रमणिका

पाँचवाँ विभाग : नारी-धर्म

शिक्षाकी आश्रमी पद्धति

मेरे आश्रम-बंधुओंके प्रति

साबरमतीके 'स्वराज्य मंदिर' में हमारे आश्रमका और आप सबका जो चिन्तन मैंने प्रतिदिन ब्राह्म-मुहूर्तमें किया, ये प्रवचन अुसीका फल है। जेल मेरे लिअे कभी जेल रही ही नहीं। कअी बार तो आपमें से — वेड़छी आश्रमके मेरे आश्रम-बंधुओंमें से, कोअी न कोअी जेलमें भी मेरे साथ रहे हैं। आपकी याद सदा दिलाते रहें, अैसे श्रद्धालु विद्यार्थियों और समान-धर्मी मित्रोंकी मण्डलीके बीच ही कारावासका मेरा अधिकांश समय बीता है। अुनके बीच जेलमें भी मेरे लिअे वेड़छी आश्रम ही चलता रहा है। वही सुबह-शामकी प्रार्थनाअें, वही भजन और धुन, वही गीतापाठ, वही सामूहिक कताअी और वही 'सहनाववतु' मंत्रके साथ सहभोजन। अिसके कारण जेलके जिस खण्डमें मेरा बिस्तर रहता, वह सदा 'वेड़छी आश्रम' के नामसे ही पुकारा जाता था।

दीवारके बाहर और दीवारके अन्दरके मेरे आश्रम-बंधुओंको अैसे अनेक प्रसंग याद आवेंगे, जब अिन प्रवचनोंमें चर्चित विषय हमारे बीच निकले थे। कभी कभी प्रार्थनाके बाद सचमुच अिसी शैलीका अेकाध प्रवचन हुआ आपको याद आयेगा। परन्तु अधिकांश प्रवचन जिस रूपमें यहां लिखे गये हैं अुसी रूपमें नहीं किये गये। चौबीसों घण्टेके हमारे सहवासमें जब जैसा प्रसंग आया, तब अुसके अनुरूप हमने अिन प्रवचनोंके विचारों और सिद्धान्तोंका रटन किया है। कभी कातते कातते और कभी टहलते टहलते हमने चर्चा और वाद-विवादके रूपमें अैसा किया है। कअी बार तो सारे प्रवचनको वस्तु अेकाध छोटीसी सूचनाके रूपमें, अेकाध विनोदपूर्ण वक्रोक्तिके रूपमें, अेकाध प्रेमभरे आग्रहके रूपमें हम सब अिशारेमें समझ गये हैं।

शिक्षाकी जिस पद्धतिको मैं 'आश्रमी पद्धति' कहता हूं, अुसकी खूबी ही यह है। सतत सहवास और सहजीवन तथा आपसके प्रेम और श्रद्धाके कारण हमारी दिरूरी धरती सदा बीजको अंकुरित करनेकी स्थितिमें ही रहा करती है। यहींमें ने अुड़कर बीज आया कि वह अुगा ही समझिये। यदि पाठशाला लगाकर और [illegible] बैठकर ही ये सारी चीजें पढ़नी-पढ़ानी हों, तो अैसे लंबे प्रवचनोंसे तो परन्तु बड़े बड़े ग्रंथोंसे भी यह करना दुःसाध्य है। आपको आश्चर्यके साथ स्मरण कि जिन प्रवचनोंने गंभीररूप धारण करके आयी हुअी बहुतसी बातें हमारे सहभोजन या सहकताई या सह-सफाअी करते समय हास्य-विनोदके रूपमें ही। कुछ बातें तो कब हमारे भीतर प्रवेश कर गयीं और कब हमारे भीतर हो गयीं, अिसका कोअी प्रसंग भी आपको याद नहीं होगा। केवल प्रवचन फिर दिलायेंगे कि यह बात अिस ढंगसे हमने किसीसे सुनी था

किसी ग्रंथके पृष्ठोंमें देखी नहीं थी, परन्तु ठीक यही हमारे विचार हैं, अ
तरह आचरण करना हम पसन्द करते हैं।

जीवनमें सीखनेके विषय सिर्फ कोअी अुद्योग, कोअी कला-कौशल या
ही नहीं है। परन्तु जन्मके साथ जड़ जमाये बैठी हुअी पुरानी घृणाओं अ
हठीले पूर्वग्रहोंसे हमें मुक्त होना है, कभी न किये हुअे नये विचारोंको खूनमे
है, नअी श्रद्धायें हृदयमें स्थापित करनी हैं और तदनुसार आचरण करते हुअे
सौदा करनेका शौर्य कमाना है। यह बात साधारण पाठशाला या अुद्योगशा
दे सकती। अिसके लिअे आश्रम-जीवनकी जरूरत है।

चरखा, पींजन और करघेके कला-कौशल तो अुद्योगशालामें सीखे जा सक
परन्तु व्यर्थकी जरूरतों और व्यर्थके मौज-शौकमें काटछांट करके अपने लिअे आ
वस्त्रादि चीजें घरमें ही बना लेनेकी तैयारी — तैयारी ही नहीं, परन्तु वैसे जं
आन्तरिक रस पैदा होना तो आश्रममें ही संभव है।

मलमूत्रका निपटारा कैसे किया जाय, अिसकी शास्त्रीय पद्धति तो
विद्यालयमें पाठ पढ़कर जानी जा सकती है। परन्तु अिनके प्रति जो घृणा हम
जनताके रोम-रोममें घुसी हुअी है और अुस घृणासे भी अधिक जहरीली जो अस्पृश्य
जनतामें पैठी हुअी है, अुस पर तो किसी आश्रममें 'महाकार्य' करते करते ही विज
पाअी जा सकती है। हरिजन बालक या बालिकाको अपना पुत्र या पुत्री बना लेन
और अपनी पुत्रीको हरिजन युवकके साथ ब्याह देनेकी अुमंग पैदा होना आश्रम
शिक्षाके बिना संभव ही नहीं है।

बीमारोंको क्या दवा दी जाय, अुनकी सेवा कैसे की जाय, अित्यादि शिक्षा
किसी वैद्यशालामें मिल सकती है, परन्तु आत्मजनोंकी या अपनी बीमारीके समय
घबरा न जानेकी, अनुचित भाग-दौड़ न करनेकी तथा मृत्युके सामने व्याकुल न
बननेकी शिक्षा तो आश्रम-जीवनमें ही मिल सकती है।

हो सकता है कि आश्रममें रहते हुअे भी अैसी शिक्षा किसीको न मिले।
अिसका दोमें से अेक कारण होगा। या तो वह नामको ही आश्रम होगा; अिन
प्रवचनोंमें जिसका चित्र दिया गया है और जिसका चित्र हमारे हृदयमें अंकित है वैसा
आश्रम वह नहीं होगा। अथवा अुस आश्रममें रहनेवाले अपने हृदयके द्वार बंद करके
वहां रहे होंगे, आश्रमी शिक्षाको अुन्होंने अपने अन्दर घुसने ही नहीं दिया होगा।

आप और हम अच्छी तरह जानते हैं कि आश्रमवाससे पहले जो श्रद्धायें हममें
नहीं थीं अैसी बहुतसी नअी-नअी श्रद्धायें आश्रमवासके कारण हमारे भीतर पैदा हुअी
हैं और दृढ़ बनी हैं। वे कब पैदा हुअीं और कब दृढ़ हुअीं, अिसका हमें पता भी नहीं। परन्तु हम देखते हैं कि आश्रम-जीवनने
और कब दी अिसका हमें पता भी नहीं। परन्तु हम देखते हैं कि आश्रम-जीवनने
हम सब पर अेकसा असर किया है; और अेकसी परिस्थितियोंमें हम सबके हृदयमें
अमुक भाव समान रूपमें ही प्रगट होते हैं; और समान परिस्थितियोंमें हम सब यहां
हीं यहां अेक ही प्रकारका आचरण करनेको तैयार होते हैं।

हम अपने बच्चोंके साथ कैसा बरताव करें, पति या पत्नीके साथ कैसा बरताव करें, जातिके लोगोंके साथ कैसा व्यवहार रखें, हमारा आहार-विहार कैसा हो, देशके कामोंमें किन सिद्धान्तोंसे काम लिया जाय, यह सब हमने कहां, किससे और कब पढ़ा? यह सब हमें अपने आश्रममें अेक-दूसरेसे किसी अकल्पनीय रूपमें मिल गया है।

हमें अपने आश्रमकी शिक्षा लेते लेते यह विश्वास हो गया है कि जिस किसीको सचमुच आत्म-रचना करनी हो, भीतरकी गहरीसे गहरी जडों तक शिक्षाको पहुंचाना हो, अुनके लिअे आश्रम ही सच्ची पाठशाला है।

यह सच है कि जिस आत्म-रचनाके लिअे हमने आश्रमवास स्वीकार किया है, अुसमें हम अभी तक बहुत पीछे हैं। कुछ बातोंमें तो हम आज भी अितने कच्चे और पीछे हैं कि दुनियाको आश्रमी शिक्षाके हमारे दावे पर विश्वास ही नहीं होता। हमारी कमजोरियोंसे आश्रमका मूल्यांकन करते हैं और आश्रमको केवल बाह्य आचार पर जोर देनेवाली और अबुद्धि पर स्थापित अेक निकम्मी संस्था मान बैठते हैं।

परन्तु जब हम अपने हृदयकी परीक्षा करते हैं तब देखते हैं कि पहले हम कहां थे और आश्रमवासके बाद आज कहां हैं; और यह देखकर हमें आश्रम और आश्रमी जीवनमें छिपी हुअी आत्म-रचनाकी अद्भुत, अकल्पनीय और अवर्णनीय शिक्षाका विश्वास हो जाता है। हम जानते हैं कि हमें जो आत्म-रचना करनी है अुससे हम अभी कोसों दूर हैं। परन्तु हमें यह भी विश्वास हो गया है कि यदि हमें आश्रमी शिक्षाका दान न मिला होता तो हम अपने ध्येयसे कोसों नहीं परन्तु खगोलशास्त्रियोंके 'प्रकाश-वर्षों' जितने दूर होते।

आत्म-रचना किसकी कितनी हुअी, आश्रमी शिक्षा किसमें कितनी विकसित हुअी, अुसका प्रतिशत माप लेने लायक पारासीसी हमारे पास मौजूद है। हमने कितने वर्ष आश्रममें बिताये, अिस पर से वह माप नहीं लिया जायगा। परन्तु हमारी सच्ची पारासीसी यह है कि हम स्वराज्य-रचना कितनी और कैसी कर सकते हैं। ज्यों-ज्यों हममें आश्रमी शिक्षा पचती जाती है, ज्यों-ज्यों हमारी आत्म-रचनाकी लाल रेखा ऊंची होती जाती है, त्यों-त्यों हम स्वराज्य-रचना अधिक गहरी, अधिक विशाल और अधिक सच्ची कर सकते हैं। हमारे घरमें, हमारे धंधेमें, हमारी देशसेवामें — हमारे रचनात्मक कामोंमें हम कितना सत्याग्रह रख सकते हैं, अिस परसे हम अपनी आत्म-रचनाका अचूक माप निकाल सकते हैं। छोटा या बड़ा जो भी हमारा जन्मसिद्ध क्षेत्र है अुसमें हम स्वराज्य और सत्याग्रहके तेजस्वी तत्त्व कितने प्रकट कर सकते हैं, अिस पर से हम और संसार हमारी आत्म-रचनाका अेक अेक अंश नाप सकते हैं।

हम खादी, ग्रामोद्योग और राष्ट्रीय शिक्षा जैसे रचनात्मक काम कुछ वर्षोंसे करते हैं; हम असहयोग, सविनय कानून-भंग, सत्याग्रह आदि राजनीतिक लड़ाअियोंमें भी कुछ वर्षोंसे भाग लेते आये हैं; हम अपने स्त्री-पुत्रों और जातिके लोगोंके साथ व्यवहार करते आये हैं। यह सब बाहरसे अेकसा दिखाअी देता हो तो भी क्या आश्रमी शिक्षाके पहले और आश्रमी शिक्षाके बादके हमारे व्यवहारोंमें तत्त्वतः अन्तर

नहीं पड़ गया है? वस्तु अेक ही है, परन्तु गुण क्या दूसरे ही नहीं हो गये हैं? क्या अुसमें अेक प्रकारका रासायनिक परिवर्तन नहीं हो गया है? और आश्रमी शिक्षाके कालमें प्रतिवर्ष और हर मंजिल पर हमारे यहींके यही कार्य क्या गुणोंकी दृष्टिसे भिन्न नहीं होते गये हैं? हमने बारडोलीके असहयोगके समय जैसी लड़ाई लड़ी या जैसा रचनात्मक कार्य किया, अुससे दांडीकूचके समयके हमारे वही कार्य गुणोंमें बदल गये थे और 'करेंगे या मरेंगे' के युगमें तो अुनमें भी कुछ अद्भुत रासायनिक विकास हो गया।

हम सब आश्रम-बंधु जहां और जिस स्थितिमें हों, वहां हमें अपने परम अुपकारी आश्रम और अुसकी शिक्षाके प्रति अैसी श्रद्धा अपने भीतर जाग्रत रखनेमें मदद मिले अिस हेतुसे ये प्रवचन मैंने जेलवासके मौकेका लाभ अुठाकर लिख डाले हैं। और अुन्हें पढ़कर सब स्वराज्य-सैनिकोंमें आश्रमी शिक्षाके लिअे प्रेम अुत्पन्न हो, अुसके बिना आत्म-रचना संभव नहीं और आत्म-रचनाके बिना सच्चे स्वराज्यकी रचना संभव नहीं, यह सत्य अुनके हृदयोंमें स्फुरित हो, यह अिनके लिखनेका दूसरा हेतु है। पहला हेतु तो सार्थक होगा ही; क्योंकि हम सब आश्रम-बंधुओंके बीच प्रेमकी गांठ बंधी हुआी है और अुस प्रेमके कारण अेक-दूसरेके वचन अथवा प्रवचन हमें हमेशा मधुर लगते आये हैं। दूसरा हेतु सिद्ध करने जितनी मधुरता अिन प्रवचनोंकी भाषामें होगी?

स्वराज्य आश्रम,
वेड़छी

जुगतराम दवे

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

पहला विभाग

आश्रम-प्रवेश

प्रवचन १

पहले दिनकी घबराहट

आप सब अुत्साहपूर्वक आज अिस आश्रममें रहने आये हैं। हम पुराने आश्रमवासी आप नये आश्रमवासियोंका प्रेमपूर्वक स्वागत करते हैं। आश्रमवाससे हमें नित्य नया आनन्द, नित्य नअी प्रेरणा मिलती रही है। आश्रममें आकर हममें नया ही जीवन आ गया है। आप नये आनेवालोंको भी अैसा ही अनुभव होगा अिसमें शंका नहीं।

नये-नये आनेवालोंके मनमें आज पहले दिन कैसी अुथल-पुथल मच रही होगी, अिसकी हम कल्पना कर सकते हैं। हम खुद जिस दिन नये आये थे, अुस दिन हम भी अिस अनुभवमें से गुजरे थे। आपने आश्रमके बारेमें तरह तरहकी बातें सुनी होंगी और अपने मनमें आश्रमकी कुछ न कुछ मूर्ति बना ली होगी। आपके मनमें अुसके लिअे खूब प्रेम है, यह तो स्पष्ट दिखाअी देता है। क्योंकि प्रेम न होता तो आप खुशी खुशी यहां दौड़े न आते। आपमें से कोअी माता-पिताको नाराज करके आये होंगे, कोअी अंग्रेजी शिक्षाका मोह छोडकर आये होंगे, कोअी नौकरी-धन्धेके निमंत्रणको ठुकराकर आये होंगे और कोअी तो विवाहका मुहूर्त टालकर भी यहां आये होंगे। आश्रमके लिअे आपके मनमें प्रेम न हो, तो अुसके प्रति अैसा आकर्षण कैसे हो सकता है?

परन्तु साथ ही आज पहले दिन आपके मनमें भीतर ही भीतर अेक प्रकारकी घबराहट भी होगी। आश्रमका अर्थ है अत्यन्त पवित्र स्थान। हमारे देशमें छोटे बच्चोंने भी ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंकी कहानियां सुनी होती हैं। श्रीकृष्ण और सुदामा सांदीपनि मुनिके आश्रममें रहकर शिक्षा लेते थे। वहां अुन्हें गायें चराने और लकड़ियां बीननेके लिअे वनमें जाना पड़ता था। रामचन्द्र और लक्ष्मण विश्वामित्र ऋषिके आश्रममें रहे थे। विश्वामित्र अुन्हें लेने आये तब पहले दशरथ राजाका जी दुखा था। 'मेरे सुकुमार कुमार वनमें कैसे रह सकेंगे? आश्रम-जीवनके कष्ट कैसे सहन कर सकेंगे?' अिस प्रकार अुनके जैसे ज्ञानी राजाको भी क्षणभर मोह हो गया था। आपने दिलीप राजाकी कथा भी सुनी होगी। वे वसिष्ठ मुनिके आश्रममें रहने गये थे। मुनिने अुन्हें बड़े आदरसे आश्रममें स्थान दिया। परन्तु वे भारतवर्षके बड़े महाराजा थे, अिस कारणसे अुन्हें आश्रमके नियमोंसे मुक्त नहीं रखा। आश्रमकी भूमिमें भेद नहीं होता। राजा और निर्धन ब्राह्मण दोनोंके लिअे आश्रममें तो अेक ही नियम, अेकसा ही जीवन। आश्रममें कामधेनुकी पुत्री नन्दिनी नामकी गाय थी। अुसे चराने जानेका काम दिलीप राजाके हिस्सेमें आया। राजाने अपना सौभाग्य समझा कि यह काम अुन्हें सौंपा गया।

अैसी हमारी आश्रमकी पुरानी कल्पना है। अिसलिअे आपके हृदय आज धड़क
तो यह समझमें आने जैसी बात है। आश्रमका अर्थ है ब्रह्मवेत्ता ॠषियोंका स्थान। वे
किसी नदीके तट पर या पहाड़की तलहटीमें स्थित होनेके कारण रमणीय तो होते ही
हैं, परन्तु साथ ही वे घोर वनमें भी होते हैं। वहां तो जो ब्रह्मचारीका तपोमय जीवन
बिताना चाहते हों वे ही जाते हैं और वे ही वहांका कठोर जीवन बिता सकते हैं।
ब्राह्म-मुहूर्तमें अुठना, कैसी भी ठंडमें गंगाजीमें जाकर डुबकी लगाना, नदीसे पानी भरकर
लाना, जंगलसे लकड़ी काटकर लाना, गायें चराने जाना — अैसा कष्टमय जीवन वहांका
होता है। गुरुकी सेवा, भिक्षाका भोजन और अुस पर भी कठोर संयम। यह सब
हमारी आत्माको भीतरसे बहुत ही प्रिय है; अैसा जीवन बितानेवाले आश्रमवासी
ब्रह्मचारियोंके लिअे हमारे मनमें आदर भी पैदा होता है। परन्तु अैसा जीवन बितानेके
लिअे स्वयं हमें किसी आश्रममें जानेका प्रसंग आये, तो हमारे मनमें घबराहट हुअे
बिना नहीं रहती। हम सोचते हैं: "क्या हम अैसे कष्टमें टिक सकेंगे? हारकर
भाग तो नहीं जायेंगे? हम तो साधारण विद्यार्थी हैं। माता-पिताकी छायामें निश्चिन्त
होकर पले हैं। आश्रममें त्यागी, पवित्र, प्राणवान ब्रह्मचारी ही रह सकते हैं।"

आपके मनमें आश्रममें आने पर घबराहट होनेका अेक और भी कारण है।
आश्रमके साथ महात्मा गांधीकी मूर्ति आपकी आंखोंके सामने खड़ी हो जाती है।
अुनका जीवन कितना कठिन और तपोमय है, यह हमारे देशमें कौन नहीं जानता?
आपमें से किसी किसीने अुन्हें यात्रामें कहीं न कहीं देखा भी होगा और अुनकी
सभाओंमें या प्रार्थनाओंमें आप अुपस्थित भी रहे होंगे। किसीने साबरमतीके तट पर
अुनका आश्रम भी देखा होगा अथवा दूसरोंसे अुसका वर्णन सुना होगा। पूज्य गांधी
अपने जीवनमें अेक क्षणका भी आराम नहीं लेते। चौबीसों घण्टे और अेक अे
तट देशको अर्पण करके वे रहते हैं। चरखेकी अुनकी अुपासना कितनी कड़ी है
सफरकी थकावट और रोगकी पीड़ामें भी वे चरखेका नागा नहीं करते। अुन
सभाओंमें लोग लाखों रुपयोंका ढेर लगा देते हैं, फिर भी पूज्य गांधीजी तो केवल
अेक कच्छसे ही काम चलाते हैं। वे नहीं मानते कि अितना भी लेनेका अुनका
है। अिसे वे देशकी कृपाभावसे दी हुअी भेंट मानते हैं।

और गांधीजीके आश्रममें रहन-सहन कैसी होती है, अिसकी बातें भी आपके
पर पड़ी होंगी। अिन सब बातोंने आपकी घबराहट बढ़ा दी हो तो कोअी
नहीं। बिना मसालेका खाना कैसे अच्छा लगेगा? हरिजन, मुसलमान, अीसाअी
साथ अेक पंक्तिमें बैठकर कैसे खाया जायगा? खाना बनाना, पीसना, कूटना,
हम शुरू करें यह कैसे हो सकता है? और पाखाने भी स्वयं ही साफ
र तो हद ही हो गअी! और आपको यह घबराहट भी रहती होगी कि
अपने अन्त तक अगर अैसी ही अैसी बातें करते रहना पड़े, तो फिर अध्ययन
जाय? अच्छी अच्छी पुस्तकें कब पढ़ी जायं?

आपकी पहले दिनकी घबराहटका चित्र मैंने हूबहू चित्रित किया है न? आपके मनमें पैठे हुअे डरका यह प्रतिबिम्ब मैं कैसे पेश कर सका, अिसका किसीको आश्चर्य होनेकी जरूरत नहीं। हम भी अेक दिन आपकी ही तरह यहां नये आये थे। पहले दिन हमने भी आपकी ही तरह घबराहट महसूस की थी। आज भी अुस घबराहटसे हम बिलकुल मुक्त हो गये हैं यह न समझिये, यद्यपि हममें से किसीको यहां आये २ वर्ष, किसीको ४ और किसीको अिससे भी ज्यादा वर्ष हो चुके हैं। ऋषि-मुनियोंके पुराने आश्रमोंकी तरह ही पूज्य गांधीजीके आश्रमकी हमारी कल्पना अितनी अूंची है कि हम पूरे आश्रमवासी कब हो सकेंगे, यह घबराहट हमें निरंतर बनी ही रहती है।

आपकी प्रथम दिनकी घबराहटमें हमारी आन्तरिक सहानुभूति आपके साथ है, यह मान लीजिये। आश्रमवासी होनेके मामलेमें हम नये और पुराने अेक ही सतह पर हैं। सच्चे आश्रमवासीके पद पर पहुंचना सभीके लिअे बाकी है। हम सब प्रयत्नवान हैं, पूर्ण कोअी नहीं। अिसलिअे आप देखेंगे कि यहां कोअी किसीके दोष नहीं निकालेगा, कोअी किसीकी आलोचना नहीं करेगा। आप हम सबको हिमालयकी चोटी पर पहुंचनेका अुत्साह और अुमंग है। परन्तु हममें से किसीने अभी तक तलहटीका रास्ता भी पूरा तय नहीं किया है। कोअी दो कदम आगे है तो कोअी दो कदम पीछे हैं; अिससे ज्यादा फर्क नहीं है। अिसलिअे यदि नयेको घबरानेका कारण नहीं है, तो पुरानेको अभिमान करनेका भी कारण नहीं है। दोनोंको प्रसन्न होनेका कारण जरूर है। हम पुराने आश्रमवासी आज अिस बातसे प्रसन्न हो रहे हैं कि आपके जैसे ताजे, नये अुत्साहसे भरे हुअे साथी हमारे साथ जुड़े हैं। कठिन मार्ग पर चलते हुअे हमें जो कुछ थकान चढ़ी होगी, वह नवीन रक्तवालोंका सम्पर्क होनेसे अुड़ जायगी। आपको भी अिस बातसे आनन्द होगा कि कठिन यात्रा पर निकलते समय आपको अनुभवी यात्रियोंका साथ मिल गया।

यह छिपानेकी जरूरत नहीं कि आश्रमवासी होना कठिन है। परन्तु अिसमें घबरानेकी कोअी बात नहीं है। हममें अुत्तम देशसेवक बननेकी लगन है, अिसलिअे अुसकी तालीम कितनी ही कठिन हो तो भी वह हमें फूल जैसी हलकी ही लगेगी। आअिये, हम नये और पुराने मित्र अेक-दूसरेका हाथ पकड़कर आनन्द मनाते हुअे, अेक-दूसरेको सहारा देते हुअे, आश्रमी शिक्षाका पहाड़ चढ़ना शुरू करें। आअिये, हम देश-रचनाके काममें लगनेसे पहले आत्म-रचना करके वह महान कार्य करनेकी योग्यता प्राप्त कर लें।

ऐसी हमारी आश्रमकी पुरानी कल्पना है। अिसलिअे आपके हृदय आज धड़कें तो यह समझमें आने जैसी बात है। आश्रमका अर्थ है ब्रह्मवेत्ता ऋषियोंका स्थान। वे किसी नदीके तट पर या पहाड़की तलहटीमें स्थित होनेके कारण रमणीय तो होते ही हैं, परन्तु साथ ही वे घोर वनमें भी होते हैं। यहां तो जो ब्रह्मचारीका तपोमय जीवन बिताना चाहते हों वे ही जाते हैं और वे ही यहांका कठोर जीवन बिता सकते हैं। ब्राह्म-मुहूर्तमें अुठना, कैसी भी ठंडमें गंगाजीमें जाकर डुबकी लगाना, नदीसे पानी भरकर लाना, जंगलसे लकड़ी काटकर लाना, गायें चराने जाना — अैसा कष्टमय जीवन वहांका होता है। गुरुकी सेवा, भिक्षाका भोजन और अंग पर भी कठोर संयम। यह सब हमारी आत्माको भीतरसे बहुत ही प्रिय है; अैसा जीवन बितानेवाले आश्रमवासी ब्रह्मचारियोंके लिअे हमारे मनमें आदर भी पैदा होता है। परन्तु अैसा जीवन बितानेके लिअे स्वयं हमें किसी आश्रममें जानेका प्रसंग आये, तो हमारे मनमें घबराहट हुअे बिना नहीं रहती। हम सोचते हैं: "क्या हम अैसे कष्टमें टिक सकेंगे? हारकर भाग तो नहीं जायेंगे? हम तो साधारण विद्यार्थी हैं। माता-पिताकी छायामें निश्चिन्त होकर पले हैं। आश्रममें त्यागी, पवित्र, प्राणवान ब्रह्मचारी ही रह सकते हैं।"

आपके मनमें आश्रममें आने पर घबराहट होनेका अेक और भी कारण है। आश्रमके साथ महात्मा गांधीकी मूर्ति आपकी आंखोंके सामने खड़ी हो जाती है। अुनका जीवन कितना कठिन और तपोमय है, यह हमारे देशमें कौन नहीं जानता? आपमें से किसी किसीने अुन्हें यात्रामें कहीं न कहीं देखा भी होगा और अुनकी सभाओंमें या प्रार्थनाओंमें आप अुपस्थित भी रहे होंगे। किसीने साबरमतीके तट पर स्थित अुनका आश्रम भी देखा होगा अथवा दूसरोंसे अुसका वर्णन सुना होगा। पूज्य गांधीजी अपने जीवनमें अेक क्षणका भी आराम नहीं लेते। चौबीसों घण्टे और अेक अेक मिनट देशको अर्पण करके वे रहते हैं। चरखेकी अुनकी अुपासना कितनी कड़ी है? सफरकी थकावट और रोगकी पीड़ामें भी वे चरखेका नागा नहीं करते। अुनके वचनमात्रसे लोग लाखों रुपयोंका ढेर लगा देते हैं, फिर भी पूज्य गांधीजी तो केवल खादीके कच्छसे ही काम चलाते हैं। वे नहीं मानते कि अितना भी लेनेका अुनका हक है। अिसे वे देशकी कृपाभावसे दी हुअी भेंट मानते हैं।

और गांधीजीके आश्रममें रहन-सहन कैसी होती है, अिसकी बातें भी आपके कानों पर पड़ी होंगी। अिन सब बातोंने आपकी घबराहट बढ़ा दी हो तो कोअी आश्चर्य नहीं। बिना मसालेका खाना कैसे अच्छा लगेगा? हरिजन, मुसलमान, अीसाअी सबके साथ अेक पंक्तिमें बैठकर कैसे खाया जायगा? खाना बनाना, पीसना, कूटना, सभी काम खुद करें यह कैसे हो सकता है? और पाखाने भी स्वयं ही साफ करें? यह तो हद ही हो गअी! और आपको यह घबराहट भी रहती होगी कि सूर्यके अुदयसे अस्त तक अगर अैसी ही अैसी बातें करते रहना पड़े, तो फिर अध्ययन कब किया जाय? अच्छी अच्छी पुस्तकें कब पढ़ी जायं?

आपकी पहले दिनकी घबराहटका चित्र मैंने हूबहू चित्रित किया है न? आपके मनमें पैठे हुओ डरका यह प्रतिबिम्ब मैं कैसे पेश कर सका, अिसका किसीको आश्चर्य होनेकी जरूरत नहीं। हम भी अेक दिन आपकी ही तरह यहां नये आये थे। पहले दिन हमने भी आपकी ही तरह घबराहट महसूस की थी। आज भी अुस घबराहटसे हम बिलकुल मुक्त हो गये हैं यह न समझिये, यद्यपि हममें से किसीको यहां आये २ वर्ष, किसीको ४ और किसीको अिससे भी ज्यादा वर्ष हो चुके हैं। ऋषि-मुनियोंके पुराने आश्रमोंकी तरह ही पूज्य गांधीजीके आश्रमकी हमारी कल्पना अितनी अूंची है कि हम पूरे आश्रमवासी कब हो सकेंगे, यह घबराहट हमें निरंतर बनी ही रहती है।

आपकी प्रथम दिनकी घबराहटमें हमारी आन्तरिक सहानुभूति आपके साथ है, यह मान लीजिये। आश्रमवासी होनेके मामलेमें हम नये और पुराने अेक ही सतह पर हैं। सच्चे आश्रमवासीके पद पर पहुंचना सभीके लिअे बाकी है। हम सब प्रयत्नवान हैं, पूर्ण कोअी नहीं। अिसलिअे आप देखेंगे कि यहां कोअी किसीके दोष नहीं निकालेगा, कोअी किसीकी आलोचना नहीं करेगा। आप हम सबको हिमालयकी चोटी पर पहुंचनेका अुत्साह और अुमंग है। परन्तु हममें से किसीने अभी तक तलहटीका रास्ता भी पूरा तय नहीं किया है। कोअी दो कदम आगे है तो कोअी दो कदम पीछे है; अिससे ज्यादा फर्क नहीं है। अिसलिअे यदि नयेको घबरानेका कारण नहीं है, तो पुरानेको अभिमान करनेका भी कारण नहीं है। दोनोंको प्रसन्न होनेका कारण जरूर है। हम पुराने आश्रमवासी आज अिस बातमें प्रसन्न हो रहे हैं कि आपके जैसे ताजे, नये अुत्साहसे भरे हुअे साथी हमारे साथ जुडे हैं। कठिन मार्ग पर चलते हुअे हमें जो कुछ थकान चढ़ी होगी, वह नवीन रक्तवालोंका सम्पर्क होनेसे अुड़ जायगी। आपको भी अिस बातमें आनन्द होगा कि कठिन यात्रा पर निकलते समय आपको अनुभवी यात्रियोंका साथ मिल गया।

यह छिपानेकी जरूरत नहीं कि आश्रमवासी होना कठिन है। परन्तु अिसमें घबरानेकी कोअी बात नहीं है। हममें अुत्तम देशसेवक बननेकी लगन है, अिसलिअे अुसकी तालीम कितनी ही कठिन हो तो भी वह हमें फूल जैसी हलकी ही लगेगी। आअिये, हम नये और पुराने मित्र अेक-दूसरेका हाथ पकड़कर आनन्द मनाते हुअे, अेक-दूसरेको सहारा देते हुअे, आश्रमी शिक्षाका पहाड़ चढ़ना शुरू करें। आअिये, हम देश-रचनाके काममें लगनेसे पहले आत्म-रचना करके वह महान कार्य करनेकी योग्यता प्राप्त कर लें।

प्रवचन २

स्वच्छताकी अिन्द्रिय

हमारे आश्रमके अेक छोटेसे नियमकी तरफ आज मैं आप सबका ध्यान दिलाता हूं। वह यह है कि आश्रमकी भूमिमें कृपा करके कोअी थूके नहीं। आप कहेंगे, 'यह कितनी छोटी और तुच्छ बात है! यह भी कोअी नियम है?" हां, यह छोटी और तुच्छ बात जरूर है, परन्तु आश्रमके स्वच्छता-व्यवहारकी कुंजी है। क्योंकि जो थूकने जैसी तुच्छ बातके लिअे आश्रम-भूमि पर कृपा करेंगे, वे नाककी रींट या थूकको जहां तहां फेंक कर हमारी भूमिको हरगिज नहीं बिगाड़ेंगे। तब फिर पेशाब पाखानेके लिअे तो कहीं भी आड़ देखकर बैठनेका काम करेंगे ही कैसे?

मुझे आपके सामने आश्रमके आचार-विचारकी बहुतसी बातें रखनी हैं। परन्तु यह बात आज पहले ही मौके पर कह देना अच्छा है। आपने देख लिया कि दोपहरको हमने आपके बिस्तरे, कपड़े और पुस्तकें आदि सब सामान धूपमें डाल दिया था। आपने और हमने मिलकर अुसकी खूब बारीकीसे जांच की थी। अैसा हमने क्यों किया सो आपने जान लिया है। हमारे घरोंमें खटमल, पिस्सू और जूं जैसे मनुष्य-जीवी जन्तु आम तौर पर रहते हैं। आपका संपर्क साध कर आश्रममें अुनका प्रवेश हो जाय, यह हम जरा भी नहीं चाहते।

अिसी तरहके कुछ बिना शरीरवाले जन्तु भी हमारे समाजमें होते हैं, अिसका आपको पता नहीं होगा। ये अशरीरी जन्तु हैं हमारी गंदी आदतें। घरमें या रास्ते चाहे जहां थूकना, नाक साफ करना, रास्ते पर पेशाब करने और शौच करनेके लिअे भी बैठ जाना, यह हमारे आदतरूपी कीड़ोंकी अेक जाति है। चलते-फिरते मुंहसे गालियां निकालना दूसरी जाति है। आलस्यमें कीमती समय बरबाद करना तीसरी जाति है। यों तो अिन आदतरूपी कीड़ोंकी अनेक जातियां हैं और वे अेकसे अेक अधिक जहरीली हैं। परन्तु आज तो हमें पहली जातिकी ही बात करनी है। अुन खटमलों और पिस्सुओंकी तरह अिन जन्तुओंको भी हम आसानीसे बीनकर निकाल सकते हैं; अेक बार आपको आंखोंसे अुन्हें पहचानना भर आ जाना चाहिये।

थूकनेके बारेमें कहां थूकें और कहां न थूकें, अिसका आम तौर पर समाजमें थोड़े ही लोग विचार करते मालूम होते हैं। लोग यही मानते लगते हैं कि थूकमें कौनसी बड़ी गंदगी है। अधिकतर तो अिसका कारण यह होगा कि थूक बहुत चिकना नहीं होता। कुछ मिनटोंमें अुसका फेन बैठ जाता है और वह जमीनमें मिलकर अदृश्य हो जाता है। अिससे लोगोंको वह पानी जैसा निर्दोष लगता होगा। परन्तु असलमें वह अितना निर्दोष नहीं होता। वह चिकना और गंदा होता ही है। वह दिखाअी नहीं देता, फिर भी मक्खियां अुसे खोजकर अुस पर बैठती हैं। अिसके

सिवा, मनुष्य रोगी हो — और अधिकांश मनुष्य किसी न किसी रोगके शिकार होते ही हैं — तो वह हवामें जहर भी फैलाता है।

थूकी हुअी जगह पर पैर पड़ जानेसे हमें कांटा चुभने जैसा अनुभव होना चाहिये। तब फिर अैसी जमीन पर बैठना या सोना तो सहन ही कैसे हो सकता है? हम आश्रममें अपनी 'स्वच्छताकी अिन्द्रिय' को बहुत ही तीव्र बनाना चाहते हैं। यह अेक नया शब्दप्रयोग है न? आपने पंच ज्ञानेन्द्रियों और पंच कर्मेन्द्रियोंके बारेमें सुना है। परन्तु अिस स्वच्छताकी अिन्द्रियके विषयमें आज ही सुन रहे हैं। आंख-कान जैसा अुसका कोअी स्पष्ट अंग नहीं बताया जा सकता। फिर भी हमारे अन्दर सूक्ष्म रूपमें अेक अैसी वृत्ति मालूम होती है, जो स्वच्छताको देखकर बहुत खुश होती है और अस्वच्छताको देखकर बहुत दुखी होती है। हम आश्रममें अिस स्वच्छताकी अिन्द्रियका विकास करके अुसे बहुत ही तीव्र बनाना चाहते हैं। अिसमें हमें काफी सफलता मिली है और आप भी देखते देखते काफी सफलता प्राप्त कर लेंगे।

स्वच्छताकी अिन्द्रियका विकास न करें तो वह नीचे गिरने लगती है और धीरे-धीरे अिस हद तक गिर जाती है कि हमें निरा पशु बना देती है। सामान्यतः टीमटामसे रहनेवाले लोग भी रास्तेमें थूक देते हैं, यह आपने देखा होगा। यही लोग यदि सावधान होकर अपनी अिस आदत पर काबू न रखें, तो घरके कोनोंमें थूंककी पिचकारियां मारने लग जाते हैं। अिस तरह करते करते स्वच्छताकी अुनकी भावना अितनी जड़ हो जाती है कि घरमें कफ थूंक देनेमें भी अुन्हें संकोच नहीं होता।

भंगीका धंधा करनेवाले हमारे अभागे भाअी-बहनोंको देखेंगे तो आपको पता चलेगा कि अुनकी स्वच्छताकी भावना बिलकुल ही मरी हुअी है। शहरोंके पाखाने कितने अधिक गंदे होते हैं! अुनमें से वे मैला निकालते हैं। अिसके लिअे कोअी अुन्हें अच्छे साधन भी नहीं देता। लगभग हाथोंसे बटोरकर अुन्हें मैला अुठाना पड़ता है। कंगाल, दबे हुअे और साहसहीन होनेके कारण अुन्हें यह स्थिति सहन करनेकी आदत पड़ गअी है। अिसमें मनुष्य-जातिकी प्रतिष्ठाको शोभा न देनेवाली कोअी बात है, यह भावना ही अुनमें नहीं रह गअी है। अिस ढंगका काम करनेके बाद खूब स्नान करनेकी तड़प लगनी चाहिये; लेकिन अिसके बजाय अुन्हें तो हाथ धोनेकी भी अिच्छा नहीं रहती। बहुतसे भंगी अपना काम करनेके बाद पूरे हाथ भी नहीं धोते और रोटी खाने बैठ जाते हैं। और वह भी गंदे पाखानोंकी छायामें बैठकर।

यह चित्र भंगियोंके प्रति तिरस्कार पैदा करनेके लिअे मैंने नहीं खींचा है। अुन्हें हमारे समाजने ही अितना नीचे गिरा दिया है। अिससे समाजको लज्जित होना चाहिये। अुन्हें अूंचा अुठाकर मनुष्यकी प्रतिष्ठा पर आरूढ़ कराना समाजका कर्तव्य है।

भंगियोंका अुदाहरण तो यह बतानेके लिअे ही मैंने दिया है कि स्वच्छताकी भावना अन्तमें किस हद तक जड़ हो जाती है। परन्तु अुच्च कहलानेवाले लोगोंकी यह भावना भी कम जड़ नहीं होती? अिन्हीं गंदे और पृथ्वी पर नरकके समान

पाखानोंमें ये खुद रोज बैठते ही हैं न? पाखानोंमें से गन्दा पानी बह रहा हो, थै
तंग गलियोंमें बैठकर जाति-भोजन करते लोगोंका दृश्य किसने नहीं देखा है? गलियों
घरके दरवाजेके सामने जूठन डालना, पेशाब करना, बच्चोंको टट्टी बैठाना — ये दृश्य
भी समाजमें रोज देखनेको मिलते हैं। अिन गलियोंकी मलमूत्र-मिश्रित जमीन पर
बच्चे खेलते हैं और लोटते हैं। परन्तु अिससे लोगोंको आघात कहां लगता है?
अिन गलियोंकी गंदी मिट्टीसे हाथ धोने या बरतन मलनेमें भी किसे चोट पहुंचती
है? समाजकी स्वच्छताकी अिन्द्रिय बिलकुल ही जड़ बन गयी है। अिसीलिये हमें
नदीके किनारों, तालाबों तथा गांवके आसपासके रमणीय मैदानोंको मल-विसर्जनके
स्थान बना देनेमें जरा भी शर्म नहीं आती।

यहां आश्रममें दो दिन रहेंगे तो आपकी स्वच्छताकी आंख खुलने लगेगी।
पक्षियोंके बच्चोंकी आंखें जन्मके समय बंद होती हैं और थोड़े दिन बाद खुलती हैं,
यह आप जानते हैं न? आपको भी अैसा ही अनुभव होगा। यह आंख खुलते ह
आप पहले-पहल क्या देखेंगे? आश्रमके लोगोंके फूलसे मुलायम और सफेद झक कपड़े
सबसे पहले आपकी नजरमें आयेंगे। क्योंकि यहां हम अपने कपड़े वगैरा गांवके
लोगोंसे ज्यादा अुजले रखते हैं। आप तुरत साबुन पर जोर देनेवाले हो जायेंगे!
नहानेमें भी अधिक पानी काममें लेनेवाले और ज्यादा साबुन लगानेवाले हो जायेंगे।
लेकिन अिसमें अतिशयता हो और आप साबुनका खर्च बढ़ा लें, यह हमें नहीं
पुसायेगा। फिर भी आपको अेकदम मना करना भी ठीक नहीं। स्वच्छताकी आंख
मुश्किलसे खुलती है; अुसके बन्द हो जानेसे भी काम कैसे चल सकता है?

आज यह सब आपसे कहता हूं अुसका हेतु समझ लीजिये। आपकी नयी
अिन्द्रिय खुलने लगे अिससे आप फूल न जाअिये। परन्तु अच्छी तरह समझकर अुसका
विकास कीजिये। जिस जमीन पर हमें चलना है, फिरना है, खेलना है, सोना है,
या प्रार्थना तथा कामकाज करने बैठना है, अुस जमीनको थूंक अित्यादिसे बिगाड़ना
आपको असह्य लगना चाहिये। दातुन करके अुसकी चीर फेंकनेके लिअे हाथ अुठे तो
अुसे तुरन्त रोक दीजिये। अुससे कहिये: "अरे हाथ, तू यह क्या कर रहा है? क्या
तू हमारी प्रिय भूमि पर ये चीरें फैलाकर अुसे भद्दी और गंदी करना चाहता है?" मल
या मूत्रके त्यागके समय सामान्य लोग अितना ही विचार करते हैं कि अुन्हें कोअी
देखे नहीं। आजसे आप यह आग्रह रखिये कि कोअी देखे या न देखे, हम अपनी
भूमिको गंदी या बदबूदार कभी नहीं बनायेंगे। हमारे आश्रममें तो अिसके लिअे खास
तौर पर पाखानोंकी व्यवस्था की गअी है। परन्तु जहां पाखाने न हों वहां भी अितना
खयाल आप जरूर रखें कि जहां मनुष्योंका आना-जाना न हो वहां जाकर बैठें और
बैठनेके बाद मलको मिट्टीसे अच्छी तरह ढंक दें।

यह सारा विवेचन करनेके बाद जूठन, कागज, सूतके टुकड़े अित्यादि न
बिखेरनेके बारेमें कुछ और कहनेकी जरूरत रह जाती है?

प्रवचन ३

आश्रम-प्रीत्यर्थ

जैसे हमारा शरीर है, वैसे हमारे आश्रमका भी शरीर है। अलग अलग मंदिर, अुद्योगालय, रास्ते, चौक, कुअें, कुण्ड, पाखाने, बगीचा ये सब अुसके शरीरके अवयव हैं। हमें अपना शरीर स्वच्छ रखना कैसा अच्छा लगता है? वैसे ही आश्रमको भी अपना शरीर स्वच्छ रखना अच्छा ही लगेगा न? अिसके सिवा, अुसे केवल स्वच्छतामें ही संतोष नहीं है। वह कुछ शृंगार भी चाहता है? आपको अैसी भाषा पर आश्चर्य होता है! आप कहेंगे, "आश्रम विचार थोड़े ही करता है? आश्रमके कहां जीव है? अुसके क्या हाथ-पैर हैं?" अुसके पास ये सब हैं। हम सब आश्रमवासियोंका संघ ही अुसकी आत्मा है। हमारे हाथ-पैर ही अुसके हाथ-पैर हैं। कैसी सुन्दर है अुसकी आत्मा? वह कभी आलस्य नहीं करती, सेवाके लिअे निरन्तर तिलमिलाती रहती है, स्वच्छता और सुन्दरताके लिअे पसीना बहानेको सदा तैयार रहती है। अैसी जिसकी आत्मा हो, जिसके बीसियों हाथ-पैर हों, वह आश्रम जरासी भी अस्वच्छता या गंदगी क्यों सहन करे? क्यों वह सुन्दर, सुशोभित और रम्य न रहे? क्यों वह अपने सुन्दर क्रीड़ागणोंमें गावके बच्चोंको खेलनेके लिअे आकर्षित न करे? क्यों वह अपनी मनोहर फुलवारीमें गावकी बालाओंको गरबा नाचनेके लिअे निमंत्रित न करे? क्यों वह अपने पवित्र चौकमें गावके बच्चों और बूढ़ों सबको प्रार्थना करनेके लिअे न बुलाये?

परन्तु आश्रमके मनकी यह सुन्दर अभिलाषा पूरी कब हो सकती है? तभी जब अिसके हाथ-पैर अच्छे और स्वस्थ हों, अुत्साहसे भरे और बलवान हों! आप सब सहमत हों तो हम आशा रखेंगे कि हम — अुसके हाथ-पैर — ढीले-ढाले, निर्बल और आलसी साबित नहीं होंगे।

आश्रमकी स्वच्छ और सुन्दर रहनेकी मुराद तभी पूरी हो सकती है, जब हम अुसकी आज्ञा शिरोधार्य करनेवाले बनें। आश्रम कोअी राजाका महल या अमीरका बंगला नहीं है। शौकीन धनी लोग नौकर-चाकर रखकर अपने निवासस्थानोंको सजाते हुअे देखे जाते हैं। परन्तु आश्रम अुस रास्ते पर नहीं चल सकता। चलने लगे तो वह आश्रम ही नहीं रहेगा। आश्रमको कोअी अुपमा देनी हो तो राजा-महाराजा या सेठ-साहूकारोंकी दी ही नहीं जा सकती, परन्तु किसी ऋषि, मुनि अथवा योगीकी ही देनी चाहिये। अुनकी सुन्दरता और स्वच्छताको परखनेकी आंख अत्यन्त तेज होने पर भी वे ये चीजें पैसेसे नहीं खरीदते, परन्तु स्वयं मेहनत करके पैदा करते और अुनकी रक्षा करते हैं।

हम अुन योगियोंकी पद्धतिसे ही अपने अिस आदरणीय आश्रमको स्वच्छ, सुन्दर और आकर्षक रखना चाहते हैं। नौकर रखकर अैसा करना हमें पुसायेगा

नहीं; और वह हमें शोभा भी नहीं देगा। हम खुद ही सेवक बननेकी लालसा रखनेवाले हैं, तब और किसके पास सेवा कराने जायेंगे? हम जिस कामको करनेकी कुशलता और ताकत न रखते हों, अुसमें दूसरोंकी सेवा लेनेकी बात तो समझमें आ सकती है। मकान बांधना हो या कुआं बनाना हो तो अुसमें दूसरोंकी सेवा लेंगे, परन्तु अपने आश्रमको साफ-सुथरा रखना तो हमारा अपना ही काम है। जब तक हम अपने हाथसे अपनी कलादृष्टिके अनुसार यह काम नहीं करते, तब तक हमारी आत्माको संतोष ही नहीं होगा।

हमारा आश्रम विशाल है। कमसे कम चार बीघे जमीनमें वह फैला हुआ है। अुसकी सफाओ करना, और वह भी हमारी सूक्ष्म कल्पनाके अनुसार, कोओ आसान काम नहीं है। परन्तु हम घबरायें क्यों? यदि काम विशाल है तो हमारे पास काम करनेवाले हाथ-पैरोंकी भी तो कमी नहीं है? और अब तो हमारी मण्डलीमें हालमें ही आप अितने नये मित्र भरती हो गये हैं। सफाओके काम बांटने बैठेंगे तो सबके हिस्सेमें भी नहीं आयेंगे, और शायद आपमें से कुछको निराश होना पड़ेगा। हरअेकको कुछ न कुछ हिस्सा तो देंगे ही, अिसका विश्वास रखिये। हां, यह हो सकता है कि पहले ही दिन किसीको अपनी पसन्दका काम न मिले। वे लोग मेहरबानी करके नाराज न हों। हम हर सप्ताह सफाओ-टुकड़ियां बदलते रहते हैं। जिस सप्ताह अपनी पसंदका काम हिस्सेमें न आये, तो बादके किसी सप्ताहमें जरूर आ जायेगा।

अब आपको मैं अिसकी कल्पना कराअूंगा कि हमारे पास आश्रमकी सफाओके सिलसिलेमें क्या क्या काम करने लायक हैं:

१. आश्रमके १० पाखानों और ६ पेशाबघरोंकी सफाओ करना।

२. रास्तों और चौकमें झाड़ू लगाना।

३. कुंड, कुआं तथा अुनसे सम्बन्ध रखनेवाली पानीकी नालियां साफ करना।

४. जूठनके खड्डे भरना और नये खड्डे खोदना।

५. आश्रमकी गोशालाका कचरा निकालना और घूरोंको नीचे-अूपर करना।

६. छात्रालय, विद्यालय, अुद्योगालय, औषधालय, वाचनालय, संग्रहालय वगैरा सार्वजनिक मकानोंकी सफाओ करना।

अिनके अलावा कुछ काम अैसे हैं, जिन्हें सफाओमें नहीं गिना जा सकता; परन्तु आश्रमकी सुविधा और सुन्दरता बढ़ानेवाले होनेके कारण हम अुन्हें आवश्यक मानते हैं। वे ये हैं:

७. रहंट चलाकर नहाने-धोनेका कुण्ड भरना।

८. बगीचेके फूलझाड़ों और कलमोंको पानी पिलाना तथा चौक वगैरामें पानीका छिड़काव करना।

९. तस्वीरों, नक्शों और सूत्र लिखनेके तख्तों वगैराको साफ करना और अुनमें फेरबदल करना।

१०. कला-मण्डपकी नित्य नअी सजावट करना।

आप देखते हैं कि आश्रमको अच्छा और सुशोभित रखना हो तो हमारे पास काम कम नहीं है। अितने काम तो हम आज तक अपने अनुभवके अनुसार और हमारी रसिकता और कलाप्रियताके अनुसार करते आये हैं। आप नअी आंखोंसे कुछ नये काम ढूंढकर सुझायेंगे, तो अुन्हें हम खुशीसे अपने कार्यक्रममें शामिल कर लेंगे।

मैं यह कह चुका हूं कि स्वच्छता और सुन्दरताके लिअे आश्रममें नौकर न रखनेकी अेक मर्यादा रखी गअी है। अुस सम्बन्धमें अेक दूसरी मर्यादा भी है। वह यह है कि अिस कार्यमें रोज ४५ मिनटसे ज्यादा वक्त किसीको नहीं देना चाहिये। अितने समयकी मर्यादामें रहकर हम अपने अपने हिस्सेका काम आरामसे पूरा कर सकते हैं। अलबत्ता, अिसके लिअे पहले तो हरअेक काममें काफी संख्यावाली टुकड़ी होनी चाहिये। दूसरे, यह भी आवश्यक है कि ये टुकड़ियां काफी चपलता और कुशलतासे अपना काम पूरा करें। तीसरे, प्रत्येक टुकड़ीके पास झाड़ू, फावड़े, कुदाली, बाल्टी, टोकरी वगैरा साधन काफी संख्यामें होने चाहिये। अिन सबकी संख्या हमने अपने अनुभवसे निश्चित कर रखी है। आप जब काममें लगेंगे तब देखेंगे ही।

हमारी दिनचर्यामें रोजके अिस ४५ मिनटके समयको हम आश्रम-प्रीत्यर्थ दिया जानेवाला समय कहते हैं। प्रत्येक आश्रमवासी रोज अितना समय अवश्य दे, यह अपेक्षा आश्रम हमसे रखता है। शिक्षक, विद्यार्थी, खादी-कार्यकर्ता, खादी-विद्यार्थी, कार्यकर्ताओंके घरकी स्त्रियां व बच्चे — सब अपने ४५ मिनट प्रेमसे 'आश्रम-प्रीत्यर्थ' देते हैं। आश्रममें रहनेवाले जुलाहा परिवारोंको आश्रमके सब नियम लागू नहीं होते। किन्तु वे भी प्रेमसे 'आश्रम-प्रीत्यर्थ' अपना समय देते हैं। कुछ कार्यकर्ताओंको अपने कामके सिलसिलेमें देहातमें घूमने जाना पड़ता है। परन्तु वे भी आश्रममें मौजूद होते हैं तब 'आश्रम-प्रीत्यर्थ' अपने हिस्सेका काम पूरा करनेसे नहीं चूकते।

स्वच्छता और शोभाके जो दस काम अूपर बताये गये हैं अुनमें सबसे श्रेष्ठ और सम्मानपूर्ण काम हम किसे मानते हैं, यह बताअूं? वह है पाखाना-सफाओका काम। हमारे यहां अुसे 'महाकार्य' जैसा गौरवपूर्ण नाम दिया गया है। हमने अपने लिअे यह नियम रखा है कि अिस काममें आश्रमके मुख्य कार्यकर्ताओंमें से कोअी न कोअी तो रोज हो ही। अुत्साही और सेवाभावी विद्यार्थी हमेशा चाहते हैं कि अुनके हिस्सेमें यह काम आये। और वे दूसरों पर दया करके अुन्हें अिस कामसे दूर रखनेकी कोशिश करते हैं। यह भ्रम है कि वे आपको भी अिस कामसे दूर रखें। नये मित्रोंको मैं सावधान करना चाहता हूं।

'आश्रम-प्रीत्यर्थं' केवल ४५ मिनट खर्च कीजिये और देवताओंके लिअे भी दुर्लभ स्वच्छता, सुन्दरता तथा ठंडकका आनन्द लूटिये। अिस सुखकी जिसे अेक बार चाट लग जाती है अुसे अिसका व्यसन हो जाता है। फिर तो अस्वच्छ स्थानमें बिना हवावाली जगहमें बन्द किये हुअे प्राणीकी तरह अुसका दम घुटने लगता है। स्वच्छताका प्रेम हम सबकी रग-रगमें अितना बस जाय, तो मैं समझूंगा कि आश्रमकी अनेक शिक्षाओंमें से अेक शिक्षामें हम सफल हुअे।

प्रवचन ४

हमारा यज्ञकर्म

जैसे हम सब आश्रमवासी रोज ४५ मिनट 'आश्रम-प्रीत्यर्थं' देते हैं, अुसी प्रकार हमारे आश्रममें यह भी नियम है कि प्रत्येकको मातृभूमिके लिअे यज्ञकर्म करने अेक घण्टा देना चाहिये। रोज दोपहरको सब आश्रमवासी अिकट्ठे होकर अेक घण्टा सामूहिक कताअी करते हैं, यह आप रोज देखते हैं और अुसमें आप रोज शामिल भी होने ही लगे हैं। यही हमारा यज्ञकर्म है।

साधारण भाषामें अग्निमें घी आदि पदार्थ होमना यज्ञ कहा जाता है। अैसा यज्ञ करनेके लिअे हमारे पास घी नहीं है। हमारे दरिद्र देशमें सुकुमार बालकोंको भी घी-दूध खानेको नहीं मिलता। परन्तु हमारे पास अेक दूसरा घी है। वह घी भारतमाताके दुर्बल शरीरके लिअे बहुत ही जरूरी है। वह घी है हमारा अपना पसीना। यज्ञका पुण्य कमायें हम और अुसमें घी होमें बेचारी गायका, यह हमें पसन्द नहीं। हम तो मानते हैं कि हमारी अपनी हड्डियोंमें से लहू बिलोकर घी हम अुत्पन्न करें वही सच्चा घी है; और अुस घीको होमें वही सच्चा यज्ञ है। मेरे कहनेका मतलब तो आप समझ ही गये होंगे? दिनमें अेक घण्टा भारतमाताके खातिर शरीर-श्रम करनेको — सूत कातनेको — ही हम यज्ञ मानते हैं।

देशके खातिर सब देशसेवक कमसे कम आध घण्टे शरीर-श्रम करें — कातें, यह पूज्य गांधीजीकी मूल कल्पना है। यह कितनी भव्य और सुन्दर कल्पना है? हमारे विशाल देशमें सैकड़ों शहर और लाखों गांव हैं। अुसमें हमारे जैसे कितने ही आश्रम होंगे और नये बनेंगे। कितने ही खादी और ग्रामोद्योगोंके केन्द्र होंगे। कितने ही सेवादल और कितनी ही समितियां होंगी। कितनी ही पाठशालायें, विद्यालय और अुद्योगशालायें होंगी। कितने ही अुत्साही देशभक्तोंके परिवार होंगे। अुन सबमें यह यज्ञका नियम पालन किया जाय तो कितना भव्य परिणाम आये!

हमारे आश्रम जैसी छोटी संस्थामें हम आश्रम-प्रीत्यर्थं रोज थोड़ासा समय अर्पण करते हैं, अुससे आश्रमकी सूरत कितनी सुन्दर बन जाती है? हम अितना यज्ञ न करें तो आश्रम गंदा, बदबूवाला और रोगका घर बन जाय और अुसमें रहनेमें हमारे

मनको किसी प्रकारका अुल्लास अनुभव न हो। हमारे गांवोंमें प्रत्येक ग्रामवासी अेक-जीव होकर रोज अपने प्यारे गांवके लिअे थोड़ा भी समय नहीं देते, जिसका बुरा परिणाम हम प्रत्यक्ष देखते हैं। गांव कितने मैले, रोगी, भूखे, बेकार और अज्ञान बन गये हैं? भारत देशकी स्थिति भी अैसी ही तेजहीन बन गअी है, क्योंकि अुसकी सन्तानें अपनी मातृभूमिके लिअे रोज थोड़ासा भी यज्ञ नहीं करतीं।

कोअी कहेगा, "देशके खातिर सभीको यज्ञ करना चाहिये, यह कल्पना तो सुन्दर है। परन्तु अिसके लिअे शरीर-श्रम ही करनेकी क्या जरूरत है? अिसके बजाय प्रत्येक भारतवासी थोड़े पैसे दे दे — मान लीजिये कि हर साल ४ आने दे दे, तो क्या अधिक अच्छा नहीं होगा? ४० करोड़ भारतवासी वार्षिक चार चार आने दें तो भी १० करोड़ रुपयोंका ढेर लग जाय। अुससे देशहितके जो काम करने हों सो कर सकते हैं।"

अिस प्रकार विरोधिका सवाल हल कर लेना आसान है। परन्तु हर साल १० करोड़ रुपये जमा करना अुतना आसान नहीं है। राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) जैसी समर्थ संस्था हमारे देशमें स्वराज्यके लिअे कितनी लड़ाअियां लड़ रही है? लोग अुसकी कितनी अिज्जत करते हैं? अुसने अपनी सदस्यताकी फीस चार आने जैसी बहुत थोड़ी रखी है। फिर भी अुसके दफ्तरमें १० लाख सदस्य मुश्किलसे दर्ज होते हैं। अिसके कारणोंमें सबसे बड़ा कारण लोगोंकी अत्यन्त दरिद्र दशा है। आप कहेंगे, "अितनी अधिक दरिद्रता देशमें है ही कहां? लोग तो देखते देखते चार आनेकी बीड़ियां फूंक देते हैं, दो चार मील चलनेकी मेहनत बचानेके लिअे मोटर बसोंको चार आने दे देते हैं।" लेकिन यह आपने अूपरी स्तरके लोगोंका चित्र खींचा, जिन्हें देशकी बिलकुल परवाह नहीं होती। अुनमें देशकी भावनावाला हजारमें अेक भी मुश्किलसे निकलेगा। और जो देशके लिअे चार आने देनेकी तैयारी दिखायेंगे, वे भी घरके छोटे-बड़े प्रत्येक आदमीके हिसाबसे थोड़े ही चार चार आने देंगे? घरका मुखिया होगा वही देगा। अिसलिअे अन्तमें तो अूपरके स्तरवालोंमें से प्रति हजार घरों अर्थात् चार-पांच हजार आदमियोंमें से चार आने देनेवाला अेक आदमी ही आपको मिलेगा।

यह तो हमने अूपरके स्तरकी बात की। परन्तु हमारे देशकी अधिकांश आबादी तो अत्यन्त गरीब, बेकार और अज्ञानमें डूबे हुअे लोगोंकी है। शहरी लोग अपने शहरोंमें, बाजारोंमें और रेलगाड़ियोंमें ही घूमते रहते हैं। अुन्हें अिस जनताके दर्शन भी बहुत नहीं होते। लेकिन हम तो ग्रामसेवक हैं और सच्चे ग्रामसेवक बननेकी अिच्छा रखते हैं। हम अिस दरिद्र जनताको रोज देखते हैं। अिसीके बीच रहते हैं। आप हमारे आश्रमके आसपासकी झोंपड़ियोंमें घूम आते हैं। मानिये कि आप देशके लिअे चार आनेका चन्दा अिकट्ठा करना चाहते हैं। आपको विश्वास है कि हमारे गांवके २०० घरोंमें से १५० घरोंमें तो आपकी अिस कामके लिअे पैर रखनेकी भी हिम्मत नहीं होगी। तुरन्त आपका मन आपको भीतरसे रोकेगा। गरीब लोग हमेशा दूसरोंसे

सूत्रयज्ञ ही क्यों ?

आज मुझे कलकी बातचीतकी पूर्ति करना है। देशके लिअे रोज कातने-
नियम रखनेको यज्ञका पवित्र नाम क्यों दिया गया है, अिसका मुख्य स्पष्टीकरण
कल हो गया। अुसके सिवा अुस नियमके संबंधमें हमारे दिलमें और भी कअी पवित्र
और भक्तिपूर्ण भावनायें भरी हैं। अिन सबको अेकसाथ मिला देनेसे हमें अपने
सूत्रयज्ञमें विलक्षण आनन्द आता है, और अुसका आग्रह हमारे रोम-रोममें पैठ
जाता है।

प्रथम तो यज्ञका व्रत स्वीकार कर लेने पर अुसका पालन अखण्ड-अटूट होना
चाहिये। सुविधा हो तब अुसका पालन करें और जरासी असुविधा होते ही अुसे भूल
जायं, तो अैसे कामको यज्ञका पवित्र नाम शोभा नहीं देता।

दूसरे, देशके लिअे होनेवाला यज्ञ देशभरमें नियत समय पर शुरू होना
चाहिये और नियत समय पर पूरा होना चाहिये। अिसका प्रचार अभी तक देशमें
बहुत नहीं हुआ है। परन्तु जिन थोड़ीसी संस्थाओंमें हुआ है, वहां दोपहरका समय
अिसके लिअे रखा गया है। हमारे आश्रममें भी वही समय रखकर हम अन्य समान-
धर्मी याज्ञिकोंके साथ अपना सम्बन्ध कायम करते हैं।

यज्ञके लिअे तीसरा जरूरी तत्त्व यह है कि देशभरमें यज्ञके लिअे करनेको
कोअी निश्चित सर्वसाधारण शरीर-श्रम होना चाहिये। पूज्य गांधीजीने अैसे श्रमके
रूपमें सूत कातनेका राष्ट्रीय अुद्योग पसंद किया है।

यज्ञमें चौथा तत्त्व यह होना चाहिये कि अुसका फल हमारे अपने खा जाके
लिअे न हो, परन्तु परोपकारके लिअे अर्पण करनेको हो। अिसलिअे हमारे अिस
सूत्रयज्ञमें हम जो सूत कातते हैं वह हम देशको अर्पण करते हैं।

यज्ञका पांचवां तत्त्व यह है कि हमारे साधारण स्वार्थके कामोंकी अपेक्षा यज्ञ-
कर्म करनेमें प्रेमका अुभार बहुत अधिक होना चाहिये। अुसमें श्रमकी चोरी तो हो
ही कैसे सकती है? हम अपनी अधिकसे अधिक गति, अधिकसे अधिक कुशलता औ
कला, अपनी सारी आत्मा अुसमें अुंडेलें तभी वह यज्ञ कहला सकता है। भारत
माता और स्वराज्यके नामसे जो काम हम करें, अुसमें यदि आत्मा नहीं अुंडेलेंगे तो
और किस काममें अुंडेलेंगे?

आशा है कि हमारे यज्ञके पीछे रही ये सारी भावनायें आपको पसन्द आ
यगी और आप पूर्ण देशभक्तिके साथ अिस यज्ञमें शरीक होंगे।

सूत्रयज्ञके चुनावके बारेमें अेक और स्पष्टीकरण भी कर लें। यह सिद्धान्त तो आप स्वीकार कर लेंगे कि देशके लिअे सबको कुछ न कुछ शरीर-श्रम करना चाहिये। फिर भी यह शंका रह जायगी कि अुसके लिअे सूत्रयज्ञ ही क्यों चुना गया है। आप कहेंगे: "कातना शरीर-श्रम कैसे कहलायेगा? यह तो बैठे बैठे करनेका काम है। अिसमें श्रम क्या होता है? किसान जो भारी मेहनत करते हैं अुसके मुकाबलेमें तो यह काम खेलके समान है। देशके लिअे किया जानेवाला काम भारी मेहनतका चुनना चाहिये, जिसके करनेसे मनुष्यको यह संतोष हो कि मैंने आज कुछ काम किया।"

सूत्रयज्ञके चुनावके पीछे कुछ दृष्टियां हैं। अुनमें मुख्य दृष्टि यह है कि वह काम राष्ट्रीय महत्त्वका होना चाहिये। हमारा चरखा ही वह महत्त्व रखता है। अिस विषयका विस्तार आगे किसी दिन मैं करूंगा। आज अितना ही अिशारा कर देना काफी है कि चरखेका राष्ट्रीय महत्त्व कितना है, यह बात अिससे साबित होती है कि अुसे हमारे राष्ट्रीय झंडेमें स्थान दिया गया है।

अिसके सिवा, हम चाहते हैं कि यज्ञकर्ममें सभी लोग शरीक हो सकें। अिस-लिअे वह हलका काम हो तो अच्छा। कातनेका काम अैसा है कि बच्चे, स्त्रियां, बूढ़े, बीमार, जिनकी अिच्छा हो वे सभी आसानीसे अिसमें शरीक हो सकते हैं। नाजुक शरीरवाले शहरियोंमें देशभक्तिकी भावना अुमड़े, तो वे कातनेका यज्ञ आसानीसे कर सकते हैं। कुदाली चलानी पड़े तो शायद अुनका अुत्साह कमजोर तबीयतके कारण गायब हो जाय। गांवोंकी मेहनती जनताके लिअे भी यह काम हलका है सो अच्छा ही है। वे भारी मेहनत करके थक गये हों, तब और भारी कामकी अुनसे आशा रखना अुचित नहीं। चरखा तो अैसा है कि मेहनती लोगोंको अुस पर कातना काम न लगकर आराम जैसा ही लगता है।

चरखा चलाना सीखना और कामोंसे बहुत आसान काम है। कोअी भी आदमी सीखना चाहे तो अुसे जल्दी ही सीख सकता है। बढ़अी, लुहार वगैराके काम यज्ञके लिअे रखे गये हों, तो अुनमें शरीक होनेकी कुशलता प्राप्त करनेमें ही लोग धीरज खो बैठें।

कातनेका यज्ञ चुननेमें अेक और दृष्टि भी है। कातनेके काम आनेवाला औज़ार सस्ता और सुलभ है, और कातनेमें काम आनेवाला साधन — रुअी — भी देशमें सब जगह आसानीसे अुपलब्ध है। खेतीका काम बहुत अच्छा है, परन्तु यज्ञके रूपमें अुसे रखनेमें कितनी कठिनाअी है? खेती-बाड़ीमें हल, बैल वगैरा जुटाने पड़ते हैं; और पहली बात तो यह है कि जमीन चाहिये। दूसरे अुद्योग लें तो भी कीमती औज़ार और काम करनेके लिअे लंबी-चौड़ी जगह चाहिये। यह सही है कि कुम्हार-काम जैसे अुद्योगोंमें औज़ार बहुत थोड़े चाहिये। लेकिन अुनके लिअे जगह कितनी लंबी-चौड़ी चाहिये?

यह सच है कि चरखा भी गरीब देशवासियोंके लिअे सस्ता नहीं माना जा सकता। परन्तु वह महंगा तो अिसलिअे पड़ता है कि हम अुसे खादी-भंडारमें खरीदने जाते हैं। वह लोकप्रिय हो जायगा तब हम अपने घरकी लकड़ी देकर गांवके बढ़अीसे बनवाने लगेंगे। और अब तो धनुष तकलीकी खोज हो गअी है। वह बांस या लकड़ीके निकम्मे टुकड़ोंसे बनाअी जा सकती है। अुसे बनानेके लिअे किसी कारीगरके पास जानेकी भी जरूरत नहीं। हम अपने हाथों साधारण चाकूकी मददसे बना सकते हैं। अथवा धनुष तकली तक जानेकी भी क्या जरूरत है? सुन्दर, छोटीसी तकलीसे भी हमारा काम अच्छी तरह चल जाता है।

अिस प्रकार जितनी दृष्टियोंसे देखें अुतनी ही दृष्टियोंसे कातनेका काम य[illegible]र्मके लिअे अनुकूल और अुचित है। 'मुझे अपने देशके लिअे रोज यज्ञ करना है शरीर-श्रम करना है' यह भावना हृदयमें जाग्रत होनी चाहिये। वह पैदा हो जायगी तो सूत्रयज्ञमें किसी बातकी बाधा नहीं आयेगी। अथवा आयेगी भी तो वह अितनी कम होगी कि अुसका बहाना लेनेमें हमें शर्म मालूम होगी।

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

दूसरा विभाग

भोजन-विचार

प्रवचन ६

आश्रमी भोजन अच्छा लगा?

आज मेरा विचार चरखे और खादीके बारेमें कहनेका था। जिसे हमने अपना पवित्र यज्ञकर्म बनाया है, जिसे देशने अपने राष्ट्रध्वजमें स्थान दिया है, जिसकी सेवा करके हम अपनी जनतामें स्वतंत्रताके प्राण पूरनेकी आशा रखते हैं, अुसकी बात तो पहले ही दिन करनी चाहिये थी। परन्तु आज कहूं, कल कहूं, करते करते ५ दिन तो दूसरी ही बातोंमें चले गये। आजका छठा दिन भी अेक दूसरा ही विषय ले लेगा। और अभी कौन जाने दूसरे कौन कौनसे विषय बीचमें जबरन् आ घुसेंगे। जीवनमें अैसा कअी बार होता है। सच्चे महत्त्वकी बात पीछे रह जाती है और तुलनामें छोटी छोटी बातें ही बीचमें आ जाती हैं। पहाड़ दूर होनेके कारण छोटे दिखाअी देते हैं और पैरोंके सामनेका पत्थर बड़ा बनकर हमारे सामने सिर अूंचा करता है। परन्तु अैसे पत्थरोंका आदर करके और अुनसे सावधान रहकर चलें, तो ही हम दूरके पहाड़ पर पहुंच सकते हैं न?

आज जिसकी बात किये बिना काम नहीं चल सकता, वह है हमारे आश्रमका आहार। वह आपको कैसा लगा होगा? कअी बार अैसा होता है कि मनुष्यको ठीक भोजन न मिले तो अुसका सारा दिन खराब हो जाता है और फिर अुसका चित्त किसी भी काममें नहीं लगता। अगर आपको आते ही आश्रमके आहारसे अरुचि हो जाय, तो सारे आश्रम पर भी अरुचि हो जानेका डर है। आप विनयी होंगे तो आंखें बन्द करके जो मिला सो खा लेंगे और अपनी अरुचि प्रगट नहीं करेंगे। परन्तु भीतरसे भी अरुचि पैदा हो गअी होगी तो वह गहराअीमें रहकर काम करेगी। और अुसके परिणामस्वरूप आपको आश्रमके आदमी, आश्रमके काम और आश्रमके सिद्धान्त सब धीरे-धीरे अरुचिकर प्रतीत होने लगेंगे, और शायद आप रातके अंधेरेका आश्रय लेकर आश्रमसे पलायन भी कर जायं!

अिसलिअे आश्रमके आहारके लिअे आपमें अरुचि पैदा न हो, अितना ही नहीं परन्तु रुचि पैदा हो और वह शुरू शुरूमें ही पैदा हो, अिसके लिअे मैं बहुत आतुर हूं। यह बात तो साफ है कि आप आश्रमके भोजनमें बहुत कुछ नया पायेंगे। अुसमें कुछ आपको अच्छा लगेगा, कुछ नहीं लगेगा। कुछ आपको विचित्र मालूम होगा और समाजके प्रचलित विचारोंको देखते हुअे अुसकी कुछ चीजें शरीरके लिअे अच्छी नहीं हैं, अैसा भी शायद आपको भ्रम हो जायगा।

सबसे पहले तो आपको बिना मिर्च और बिना बघारका खाना फीका लगेगा। हमारी रोटियां आपको खुरदरी लगेंगी, चावल चिकने लोंदे जैसे लगेंगे, दालमें छिलके देखकर कदाचित् आपको खाना बनानेवाले पर गुस्सा आयेगा। और थालीमें बगैर पकाअी हुअी कच्ची भाजी आयेगी तब आप अपने मनमें हंसने लगेंगे और कहेंगे कि हमें अिन आश्रमवालोंने क्या करके समझ लिया है?

ये तो मैंने वे नवीनताअें गिनाअीं, जो पहली नजरमें दिखाअी दे जाती हैं। दूसरी आपको धीरे धीरे दीखने लगेंगी। मैं आपको आज यह समझाना चाहता हूं कि भोजनमें अिनमें से कुछ भी परिवर्तन खाना बनानेवालेके दोषसे या खरीद करनेवालेकी अकुशलतासे नहीं हुआ है। यह बात भी नहीं है कि हम कंजूसी करके घटिया वस्तुअें काममें लेते हैं। भोजनमें जितने परिवर्तन आप देखते हैं, वे सब हमारे भोजनके गुण बढ़ानेके लिअे जान-बूझकर जारी किये गये हैं। अिन परिवर्तनोंसे हमारा भोजन अधिक पौष्टिक, अधिक रुचिकर, अधिक सुन्दर, अधिक भावनायुक्त बन गया है।

आम तौर पर सज्जन लोग आहारके बारेमें बहुत विचार नहीं करते। वे कहते हैं: 'क्या खायें और क्या पियें, अिसका विचार ही क्या करना? जो थालीमें आ जाय अुसे अीश्वरका नाम लेकर खा लेना चाहिये और अपने काम-धंधेमें लगे रहना चाहिये।' और अेक तरहसे यह ठीक भी है। गांवके गरीब लोगोंको खाने-पीनेका विचार करनेकी फुरसत ही कहा होती है?

रोटी और मिर्च अथवा थोडी-सी पतली कांजी जो मिला सो खाया और काममें लग गये। यही अुनका जीवन है। अैसा न करें तो अुनका समय खराब हो, काममें देर हो जाय और वे दिनभरकी रोजी गंवा बैठें। और परिणाम-स्वरूप पतली कांजीके भी लाले पड़ जायं। और विचार करें तो भी किसका विचार करें? खानेकी बानगी ही जहां अेक हो, अुसमें कअी दिनों और महीनों तक फेरबदल करनेकी स्थिति ही न हो, और वह अेक बानगी भी पेट भरकर न मिले, वहां भोजनकी विविधताका विचार कैसे किया जाय? विचार करना हो तो अेक ही विचार अुन्हें सूझ सकता है, और वह यह कि थोड़ा अधिक खानेको कैसे मिले।

केवल अूपरी स्तरके लोगोंकी रहन-सहन देखें, तो यह स्थिति अुनसे बिलकुल अुलटी मालूम होगी। वहां तो खाने-पीनेके विचारोंके सामने काम-धंधेका विचार करनेकी मानो किसीको फुरसत ही नहीं मिलती। घरमें जितनी स्त्रियां होंगी अुन सबका मुख्य कार्यक्षेत्र अुनका रसोअीघर ही होता है। भोजनकी बानगियोंमें नित-नयी विविधताअें कैसे लाअी जायं, नित-नयी स्वादिष्ट चीजोंसे थाली कैसे सजाअी जाय, अिसीका चिन्तन और अिसीकी खटपट! पुरुष अिससे संबंध रखनेवाले काम-काजमें कभी भाग नहीं लेंगे, परन्तु सलाह-मशविरे और डांट-फटकार बरसाकर हमेशा अपना पूरा सहयोग देते रहेंगे। अैसे घरोंमें हम क्या दृश्य देखते हैं? बहनें चूल्हेके पाससे सारे दिन हट ही नहीं सकतीं। और चूल्हेके आसपास अुन्होंने कितनी कलाका विकास कर लिया है? रोटी अुनकी कागजसे भी पतली होगी। भातको धोकर, मलकर, भिगोकर अितना निखरा हुआ और सुन्दर बना देंगी कि मोगरेकी कलियां ही देख लीजिये। तरह तरहकी दालें साग सब्जी अैसी बना रखी होंगी कि छिलकेका कचरा अुनमें ढूंढे भी न मिले। अुनके रसोईमें दाल, साग, कढ़ीके लिअे दस-बीस तरहके मसाले सदा तैयार मिलेंगे; किस सागमें कौनसा मसाला डालना चाहिये, किस पकवानके साथ कौनसा दाल-साग चाहिये, यह सब भोजनशास्त्रकी मनुस्मृतिके अनुसार ही होगा! चटनियां, पकौड़ियां वगैरा भी

के स्वरमें ताल मिलानेवाली ही होंगी। समय समय पर मिष्टान्न तो होगा ही।
के स्वाद और रंग-रूप किस मौके पर कैसे बनाये जायं, ये सब बातें कितनी
कीसे अमलमें लाओी जाती है! अिसके साथ दिनमें दो-चार-छह बार चायपानी
नाश्तेके कार्यक्रम तो चलते ही रहते हैं। यह तो साधारण रोजाना जिन्दगीका
हुआ। परन्तु भोजन पर अिससे कहीं अधिक विचार किया जाता है, समय खर्च
ा जाता है और परिश्रम अुठाया जाता है। वर्षमें अेक बार पापड, बड़ी, सेव,
ार वगैराके नैमित्तिक सत्र खोले जाते हैं। जब ये सत्र शुरू होते हैं, तब
गांच सात-सात दिन तक घर घरमें अिसीकी धूम और अिसीका वातावरण
ा रहता है।

पहलेके जमानेमें भोजनके सम्बन्धमें बहनोंको कुछ काम भी करने होते थे, जैसे
ना, पीसना, दलना, छाछ बिलौना अित्यादि। अब अिन मेहनतके कामोंसे और
ढ साथ शरीरकी तंदुरुस्तीसे भी बहनोंको मुक्ति मिल गअी है! आटा मिलसे
यार आ जाता है, दाल-चावल भी मिलसे तैयार होकर आते हैं और घी-दूध
जारसे मिल सकता है। बेशक, बहनोंने बचा हुआ समय बरबाद नहीं होने दिया।
होंने रसोअीकी कलाको अधिक सूक्ष्म, अधिक विविधतापूर्ण बनानेमें अुसका
पयोग कर लिया!

जहां अैसा पारिवारिक जीवन चलता हो वहां स्त्रियां काम-धंधेमें सहायता दे
कें, अैसी अपेक्षा ही कैसे रखी जा सकती है? गरीब ग्रामवासियोंको अैसा करना
सा ही नहीं सकता। वे तो घरके सारे मजबूत आदमी — पुरुष हों या स्त्रियां
— धंधा करें तो भी पूरा नहीं कमा सकते। परन्तु जिस अूपरी वर्गका चित्र यहां दिया
या है अुसे स्त्रियोंकी मददका लालच नहीं है। अुनमें से कुछको तो थोड़ीसी मेहनतसे
रों कमाओी हो जाय, अैसी युक्ति-प्रवृत्तियां आती हैं। कुछ कर्जा करके घरबार
लानेकी हिम्मत बढ़ा लेते हैं। परन्तु अधिकांश लोग अेक और ही रास्ता अपनाते
हैं। वे खुराकमें से घी-दूध जैसी जरूरी किन्तु महंगी वस्तुओंमें काटछांट करके और
लड़के-लड़कियोंके बीच, बहू-बेटीके बीच, कमाअू-बेकमाअूके बीच भेदभाव करके खर्च कम
करते हैं। और स्त्रियां खुराकमें स्वादको बढ़ाकर अिन पोषक तत्त्वोंकी कमीको भुला
देती हैं।

आश्रममें हम अिन दोनोंमें से अेक भी पद्धति स्वीकार नहीं कर सकते। हम
मानते हैं कि गरीब ग्रामवासी आहारके सम्बन्धमें सही विचार करना सीख लें, तो अैसी
[illegible] भी वे अधिक पोषण प्राप्त करके अधिक नीरोग और मजबूत बन सकते हैं।
अूपरी स्तरके लोगोंमें भोजनके बारेमें बेशक बहुत विचार हुआ है। परन्तु जैसा हम
अूपर देख चुके हैं, वह अुलटी दिशामें ही हुआ है। अुन्हें अब दूसरी ही दिशामें विचार
करनेकी जरूरत है।

हम [illegible] हैं, [illegible] ग्रामवासियोंके भोजन बदलनेकी अपेक्षा करते हैं। हम अपना
भोजन-खर्च [illegible] नहीं बढ़ा सकते। हमारे [illegible]-

प्रवचन ७

आश्रमी आहारकी दृष्टियां

१. स्वदेशीकी दृष्टि

हमारे आहारमें सबसे पहली तो हम स्वदेशीकी दृष्टि रखनेका आग्रह करते अिसलिअे हमारी खानेकी चीजें — अनाज, शाकभाजी वगैरा सब हमारे आश्रममें कर लेना हम पसन्द करते हैं। हम आश्रमवासियोंकी संख्या बडी है और हमारे जमीन तुलनामें कम है। अिसलिअे हम आवश्यक सारा धान्य आश्रममें पैदा नहीं सकते। बाकी आवश्यक अनाज हम अपने गावमें या नजदीकके गावोंमें पैदा हुआ प्राप्त करते हैं।

अिस तरफके गांवोंमें ज्यादातर जुआर पैदा होती है और मोटे-किस्मके चावल होते हैं।

खुराकमें गेहूं जुआरसे तत्त्वमें बेशक अूंचा है। फिर भी घरकी जुआरको छोड़ बाहरी प्रान्तोंके गेहूं खाना हम स्वदेशीके सिद्धान्तके विरुद्ध मानते हैं। जुआर-बाजरेमें कुछ कम हों तो भी वह जगह जगहका प्रचलित धान्य है और काफी मात्रामें तत्त्व रखता है। यह सच है कि गेहूंमें तुरन्त मिठास छूटती है और जुआरमें री तरह चबाने पर मिठास छूटती है। लेकिन अिसकी कोअी चिन्ता नहीं। हमें सा आलस नहीं है। हम खूब चबायेंगे और जुआरको गेहूं बनाकर खायेंगे, तु अपने गावका अनाज ही खायेंगे।

यहांके मोटे और लाल चावल देखकर नाजुक लोग मुंह बिगाडते हैं और अुन्हें की अुपमा देते हैं। हमने तो 'कड़ा सबसे बड़ा' माना है। सच पूछा जाय तो ये मोटे चावल खूब पसन्द आ गये हैं। कितनी मिठास है अुनमें? अुनका रंग भी हमारी आंखोंको पसन्द आ गया है। वह हमें गेहूंकी याद दिलाता है। वल खाकर दूसरे गाव जानेके लिअे निकले हों, तो वे गेहूंकी तरह ही हमें त पहुंचाते हैं। जितना सफेद अुतना खूबसूरत होता है, क्या यह अेक ही नहीं है? प्रत्येक वस्तु अपने कुदरती रंगमें सुन्दर ही होती है। हमारे रोंका रूप हमें अितना पसन्द आ गया है कि अुन्हें पत्तलोंमें देखते ही हमारे पानी आने लगता है। आप प्रचलित भ्रमसे चिपटे न रहें तो आपको भी अैसा हुअे बिना नहीं रहेगा।

अिसी स्वदेशी दृष्टि रखनेसे हम आसानीसे भोजनमें मर्यादा रख सकते हैं सपासके लोगोंके साथ कुछ न कुछ समानता कायम कर सकते हैं। जिसे करना है, अुसके लिअे यह जरूरी है।

२. पोषक तत्त्वोंकी दृष्टि

जनताके साथ समानता रखनेके लिअे हम गेहूंके बजाय ज्यादातर जुआर-बाजरेकी रोटी खायें यह ठीक है। परन्तु साथ ही खुराकमें पोषक तत्त्व कम न हो जायं, अिसके लिअे भी हमें सावधानीसे प्रयत्न करना ही चाहिये। सौभाग्यसे बहुत खर्चमें पड़े बिना हम अपना आहार अधिक पौष्टिक बना सकते हैं, यदि हम समाजमें फैले हुअे अन्धविश्वासोंमें न फंस जायं और थोड़ासा शरीर-श्रम करनेको तैयार हो जायं।

लोग मुलायम और सफेद रोटियां पसन्द करते हैं और अिसके लिअे आटा खूब बारीक पिसवाकर अुसमें से भूसा निकाल देते हैं। आहारशास्त्री कहते हैं यह भूसा कचरा नहीं है, परन्तु अुसमें कीमती पोषक और पाचक तत्त्व विद्यमान हैं। लोगोंने अिस सुन्दर चोकरका नाम भूसा रख दिया। और वे हमारी खुरदरी सांवली रोटियां देखकर हंसते हैं, अिससे क्या हम अिस कीमती चीजको फेंक दें? कभी नहीं। चावलोंमें से भी लोग अुन्हें सुन्दर और खिले हुअे बनानेके लिअे बहुतसा पोषक तत्त्व फेंक देते हैं। मिलमें धानको अैसा दबाकर पीसा जाता है कि अूपरके छिलकेके साथ भीतरका मिठास और चिकनाअीवाला कीमती अस्तर बिलकुल छील दिया जाता है। अिस भूमीकी अेक चुटकी मुंहमें रखें तो भी हमें विश्वास हो जायगा कि अुसमें कितनी मिठास है। अुसमें थोड़े ही दिनमें कीड़े पड़ जाते हैं, यह भी अुसके भीतरकी मिठासका — पोषक तत्त्वका — सबूत है। हम अिस तत्त्वको क्यों खोयें? भात फूल जैसा अुजला न दिखाअी देगा, परन्तु जरा ललाअीवाला दिखाअी देगा; अुसका दाना-दाना खिला न होगा, बल्कि जरा लोंदे जैसा होगा। परन्तु ज्यों ज्यों हम अुसके गुणोंके पुजारी बनेंगे, त्यों त्यों अुसका यही रूप-रंग हमारी आंखोंको अच्छा लगने लगेगा। हमें तो अच्छा लगने भी लगा है। भातको खिला हुआ और सुन्दर बनानेके लिअे लोग चावलके पक जानेके बाद मांड़को बेकार समझकर फेंक देते हैं। हम अैसा क्यों करें? और नये चावलोंमें चिकनाअी होती है, अिसलिअे लोग तीन-चार वर्ष पुराने करके अर्थात् अुनका पोषक तत्त्व नष्ट हो जानेके बाद अुन्हें काममें लेते हैं। यह तो कोअी सफेद रंगका शौकीन आदमी सफेद बालोंवाला बुढ़ापा पसन्द करे, अैसी ही बात होगी।

चावल, आटे वगैरामें से भूसी निकाल देनेमें अेक सुविधा जरूर हो जाती है। मिठासवाली भूसी न होनेसे व्यापारियोंके मालमें कीड़े नहीं पड़ते। घरमें स्त्रियोंको भी कीड़े साफ करनेकी मेहनतसे छुटकारा मिल जाता है। परन्तु हम केवल सुविधाकी दृष्टि रखें या पोषणकी? यदि पोषणके रूपमें अुसका कोअी मूल्य न रह जाय तो सुविधा हमारे किस कामकी? आटे और चावलके बड़े भंडार रखनेकी जरूरत ही क्या है? हम तो अनाज और धानका ही संग्रह करते हैं और आवश्य मात्रामें ही अुसका आटा और चावल बना लेते हैं। हमारे देशमें पीसने और कूटने मिलें चालू होनेसे पहले यही रिवाज था।

यह तो मुख्य अनाजोंकी बात है। आहारशास्त्री अिस बात पर बहुत जोर देते हैं कि खुराकमें फल-फलादि, ताजा शाक और हरी तरकारियां बहुत ही आवश्यक ये बाजारसे खरीद कर लाने हों तो खर्च बहुत बढ़ जाय और किसी भी सेवक या सेवक-संस्थाकी शक्ति-मर्यादाके बाहर चला जाय। परन्तु जमीन और पानीकी भी सुविधा हो, तो हम मानते हैं कि कितनी ही मेहनत करनी पड़े तो भी ये में जरूरतके लायक पैदा कर ही लेनी चाहिये।

शुरूमें हम आश्रममें साग-भाजी वगैराकी बाड़ी नहीं लगा सके थे। अुस वक्त एक अेकमात्र आधार प्याज था। प्याजको हिन्दुस्तानमें लोग तामसी खुराक और अुसके प्रति अरुचि रखते हैं। अिस मान्यतासे कुछ समय हम भी घिरे रहे और अन्य लोगोंकी तरह सिर्फ दालोंको साग मानकर काम चलाते थे। लोग मानते हैं कि साग रोटीको चबानेमें मदद करनेवाली अेक वस्तु है। असलमें वह खास आवश्यक पोषक तत्त्व रखनेवाली खुराकका अेक महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसके खुराक अपूर्ण रहती है और स्वास्थ्यमें दोष पैदा होता है। जबसे यह बात हमारी में आअी तबसे हमने प्याजको तुरन्त ही स्वीकार कर लिया। अुसे गरीबोंकी भी कहा जाता है, यह गलत नहीं है।

अुसके बाद सुविधा मिलने पर अब तो हम आश्रममें बाड़ी करने लगे हैं। आज देखते हैं कि हम अैसी स्थितिमें आते जा रहे हैं कि साग और पत्ता-भाजियां मात्रामें ले सकें। यह सच है कि खुराकमें अिस नअी वृद्धिसे हमारा भोजन ण देहातियोंके भोजनसे बहुत समृद्ध हो जाता है। गांवके लोगोंसे अच्छा काम तौर पर हमें शर्म आती है। लेकिन यह वृद्धि हमने अपनी मेहनतसे की सलिअे हमें अैसी शर्म माननेका बहुत कारण नहीं है। हम यह भी आशा रखते हमें देखकर और यह समझकर कि सच्चा भोजन कैसा होना चाहिये, ग्राम-भी हमारे रास्ते पर आने जायेंगे।

३. दूधमें गोसेवाकी दृष्टि

लोगोंमें यह भ्रम होता है कि साग-भाजी और फल खुराकमें लेना बहुत जरूरी है और अुन्हें खानेसे बीमार हो जाते हैं। परन्तु भगवानकी दया है कि दूध, और घीके बारेमें अैसा कोअी भ्रम लोगोंमें नहीं है। सब कोअी यह मानते हैं शक्ति और आयुवर्धक वस्तुअें हैं। नये युगके आहारशास्त्री भी अिन खाद्यों बहुत ज्यादा जोर देते हैं। खास तौर पर निरामिषाहारियोंका तो अिन चीजोंके काम ही नहीं चल सकता, अैसी अुनकी राय है।

फिर भी हमारे समाजमें तो छोटे बच्चोंको भी दूध-घीके लाले पड़े हुअे हैं। दरिद्रताके कारण वे आवश्यक वस्तुअें न रहकर मौजशौककी चीजें हो गअी लोगोंको दूध, घी वगैरा न मिलें और हम सेवक खायें, अिससे हमारे हृदयमें शरमका संकोच तो रहता ही है। परन्तु स्वास्थ्य और शक्तिके साथ अुनका

नहीं! और बुद्धिका सच्चा तेज चिल्लाहट और वितंडावादके रूपमें कैसे प्रकट हो सकता है?

आहारके मामलेमें कुछ लौकिक कल्पनाओं हमारे समाजमें बहुत ही गलत और अुलटी चली आ रही हैं। अुन्हें हमें सुधार लेना पड़ेगा। मिर्च-मसालोंके बारेमें तो मैं कह ही चुका हूं। अुससे अुलटा भ्रम प्याजके विषयमें है। वह तामसी और धार्मिक मनुष्योंके न खाने योग्य मान लिया गया है। अुसे क्यों न खाना चाहिये, अिसकी तरह तरहकी कहानियां भी लोगोंने गढ़ ली हैं। परन्तु असलमें देखें तो अैसा मालूम होता है कि अुसकी निंदा अुसके अुग्र स्वाद और गन्धके ही कारण है। यह नहीं कहा जा सकता कि अुसमें मसालों जैसा अवगुण है। अुसके गुण आहार-शास्त्री अितने बताते हैं कि हमारे गरीब देशमें अिस सस्ती सुलभ वस्तुका त्याग करना राष्ट्रीय आपत्ति हो जायगी।

दूसरा अंधविश्वास लोगोंमें यह है कि साग-भाजीसे पित्त हो जाता है, बुखार आ जाता है। जिस ऋतुमें साग-भाजी अधिक मात्रामें पैदा होती है, अुसीमें बरसातके पानीके गढ़े जहां-तहां भरे रहते हैं, वनस्पति जहा-तहां सड़ती है और मच्छरों वगैराकी अुत्पत्ति बढ़कर बीमारियां फैल जाती हैं। लोगोंने और वैद्योंने भी अिन बीमारियोंका सम्बन्ध कुदरतकी दी हुअी समकालीन साग-भाजीके साथ जोड़ दिया है!

अिसके अलावा साग-भाजी और कंदमूल खानेमें हमारे देशके धार्मिक वृत्तिवाले लोगोंको हिंसाकी भी शंका रहती है। अपनी अहिंसाकी भावनाको हम ठेठ वनस्पति-सृष्टि तक पहुंचा सकें, यह तो बड़ी अुन्नत स्थिति होगी। परन्तु जिसकी दया साग-भाजी तक पहुंचती हो, अुसका तो सारा जीवन ही दूसरी तरहका होगा। वह खाते समय ही नहीं, परन्तु चलते, बैठते, अुठते, दान करते और सांस लेते समय भी दयावृत्तिसे अितना भरा रहता होगा कि अिनमें से अेक भी क्रिया करना अुसे अच्छा न लगेगा। अुसे अपनी अिन क्रियाओंमें अनेक अदृश्य और दृश्य जीवोंके प्रति कठोरता, क्रूरता दिखाअी देगी। अर्थात् अैसे मनुष्यको शरीर धारण करना ही असंभव हो जायगा। साग-भाजी छोड़कर पुण्य कमानेका प्रयत्न करनेवालोंका जीवन क्या अितनी अूंची दया तक पहुंचा हुआ होता है? वे जीवनके दूसरे सब कामोंमें दूसरोंसे अधिक विचार-शीलता शायद ही दिखाते हैं। खानेमें भी वे साग-भाजी छोड़नेके सिवा कोअी सूक्ष्म विचार करते नहीं पाये जाते। और अिसलिये अुनके कामोंमें न तो गहराअी होती है, न धार्मिकता होती है और न नम्रता होती है। सागके कीमती तत्त्व व्यर्थ गवा देनेके सिवा वे कोअी भी पुण्य नहीं कमाते।

अिसी प्रकार टमाटर, गाजर और तरबूज जैसी सस्ती गुणकारी, सुन्दर, स्वादिष्ट और सुलभ वस्तुओंको भी लोगोंने अधार्मिक मान लिया है। और अिस तरह माननेवालोंके पास तो कुछ भी स्पष्ट कारण प्रतीत नहीं होता। जो कारण बताये जाते हैं वे बिलकुल बेहूदे और हास्यास्पद हैं। टमाटर और तरबूज क्यों न खाये जायं?

आहारशास्त्री फल-फलादिके गुण गिनानेमें कभी थकते ही नहीं। गीताके अपरोक्त श्लोकोंमें सात्त्विक आहारके जितने लक्षण बताये गये हैं, वे सब फलोंमें समाये हुअे हैं। रसाल, रोचक, स्निग्ध, सुख-प्रीति बढ़ानेवाले — ये सारे विशेषण देखकर मैं तो यह अनुमान लगाता हूं कि यह फलोंका ही वर्णन है। सात्त्विक आहारका वर्णन करते समय व्यासजीकी आंखोंके सामने फल ही रहे होंगे। अनके दूसरे विशेषण हैं — आयु, सत्त्व, बल, स्वास्थ्य बढ़ानेवाले और स्थिर। ये गुण रखनेवाले तत्त्व फलोंमें अच्छी मात्रामें हैं, असकी साक्षी आजकलके आहार-वेत्ता मुक्त-कण्ठसे देते हैं।

अैसे फलोंको आहारमें प्रमुख स्थान न देकर हम क्यों तरह तरहकी मिठाअियां आटा, घी, शक्कर, मावा वगैराके मिश्रणसे बनाते हैं, असका मुझे बड़ा आश्चर्य है। वास्तवमें मिठाअियां और कुछ नहीं, रसोअीघरमें फलोंकी ही बनाअी हुअी नकल जान पड़ेंगी। हम मनुष्य विचित्र प्राणी हैं। हमें असलसे असकी नकलके प्रति अधिक आकर्षण रहता है। अुसे हम कलाका नाम देते हैं। रमणीय सूर्योदयका सच्चा दृश्य सामने फैला होगा तो अुसकी तरफ हमारा ध्यान नहीं जायगा, परन्तु अुसके चित्रका हम बखान करते रहेंगे। सिलावट पत्थरका खम्भा घड़ेगा तब अैसा दिखायेगा मानो वह लकड़ीका हो! और बढ़अी लकड़ीका खम्भा घड़ेगा तब अैसा आभास करायेगा मानो वह पत्थरका हो! मिठाअी-रूपी नकली फल कितने ही सुन्दर बनाये जायें, तो भी वे सच्चे फलोंकी बराबरी कैसे करेंगे? अुनमें मिठास आ जायगी, परन्तु मधुरता नहीं आ सकती; केसर आदिके रंग दिये जायेंगे, परन्तु कुदरती रंगकी सुन्दरता आना संभव नहीं; अिलायची वगैराकी खुशबू डालेंगे, परन्तु स्वाभाविक सुगन्ध आना सम्भव नहीं। और आपके कृत्रिम फल गुणोंमें तो कुदरती फलोंकी बराबरी कभी कर ही नहीं सकते। अुन्हें आप घी, मावा वगैरा डालकर पौष्टिक बनानेकी कोशिश करेंगे, परन्तु पचनेमें बहुत भारी होनेके कारण अुनकी पौष्टिकता अधिकतर व्यर्थ जायगी। फिर भी मनुष्य असली फलोंको छोड़कर नकल — मिठाअीका ही सेवन करना पसंद करता है!

सात्त्विक आहारका गीतामें दिया हुआ वर्णन जैसे फलों पर लागू होता है वैसे दूध पर भी लागू होता है, अैसा कहा जा सकता है। वह भी रसाल, रोचक और स्निग्ध होता है; और बल, स्वास्थ्य आदिको बढ़ानेवाला है। हमारे लोग पुराने जमानेसे गायके दूधको सात्त्विक भोजन मानते आये हैं। दूध, दही, छाछ और मक्खन के गुणोंको आजकलके आहारशास्त्री भी स्वीकार करते हैं। अुनका आग्रह है कि निरामिष आहारके साथ अिन्हें जोड़ना जरूरी है।

हमारे देशमें ताजे दूधसे लोग घीके लिअे और अुससे बने हुअे पकवानोंके अधिक पक्षपात रखते मालूम होते हैं और अिसलिअे गायका त्याग करके अधिक घी-युक्त दूध देनेवाली भैंसको पालने लग गये हैं। कोअी भी चीज मर्यादासे बाहर ... यह स्पष्ट है। घी दूधसे बनता है अिसलिअे मर्यादासे

खायें और पकवानोंके रूपमें खायें, तो भी वह सात्त्विक आहार कैसे रहेगा? अ[ति]
घी खानेवालेके शरीरमें मेद बढ़ जाता है, चपलता और कार्यशक्ति घट जाती [है]
और शायद अुसे ब्रह्मचर्य-पालनमें भी बाधा होती है।

दूध सात्त्विक आहार तो जरूर है, परन्तु गायको चाहे सो खिलानेसे अुसकी
सात्त्विकता नहीं रहती; अथवा कम हो जाती है। हमारे घी-भक्त लोग गायोंको बिनौ[ले]
वगैरा जैसा चरबी बढ़ानेवाला दाना बड़ी मात्रामें देना पसन्द करते हैं। वास्तव[में]
गायोंको हरा चारा ही अधिक देना चाहिये। अुसमें हरी कड़वी और थोड़ा-घा[स]
जैसे कमवाले घास भी देने चाहिये। असी खुराक खानेवाली गायका दूध पतला त[ो]
होगा, परन्तु गुणों और पाचकतामें अधिक अच्छा होगा। और अिसीलिअे अुस[में]
सात्त्विक गुण ज्यादा होंगे।

अिसके सिवा, गायोंको दिनभर भैंसोंकी तरह खूंटेसे बांध रखनेमें भी अुन[के]
दूधकी सात्त्विकता चली जाती है। गाय अपनी खुराक पूरी तरह पचा नहीं स[के]
और मनसे भी प्रसन्न न रहे, तो अुसका असर दूधमें आये बिना कैसे रहेगा? खु[ली]
हवामें आजादीसे खूब चरनेवाली गायें ही सात्त्विक गुणोंवाला दूध दे सकती हैं।

अिस प्रकार यह नहीं मान लेना चाहिये कि कोअी भी दूध सात्त्विक है।
हम प्रयत्नपूर्वक सात्त्विक बनायें तो ही वह सात्त्विक बनेगा और अुचित रूप तथा
अुचित मात्रामें ग्रहण करें तो ही वह सात्त्विक गुण देगा।

सात्त्विक आहारमें कौन कौनसी वस्तुअें आती हैं, अिसका हमने विचार कि[या]
है। आश्रमका अपना आहार हम यथासाध्य सात्त्विक रखनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु
कोअी भी सात्त्विक चीजें खानेसे ही हमारा स्वभाव, हमारे आचार-विचार सात्त्वि[क]
हो जायेंगे, यह मान लेनेकी भूल कोअी न करे। और अिससे भिन्न प्रकारके पदार्थ
खानेवालोंको रजोगुणी या तमोगुणी भी न मान बैठे। सात्त्विक चीजें खानेसे जीवन
सात्त्विक बनानेका प्रयत्न करनेवालेको कुछ मदद जरूर मिलती है, परन्तु केवल अिन[से]
करनेसे जीवन सच्चा सात्त्विक हो जाय तब तो क्या चाहिये? अिसलि[अे]
सात्त्विकताकी दृष्टिसे आहारका विचार करें, तो अुसमें केवल अितना ही विचार न
करना होगा कि कौनसे पदार्थ खाये जायें और कौनसे न खाये जायें, बल्कि अिस[से]
अधिक गहरे अुतरकर विचार करनेकी जरूरत है।

हम कितनी ही सात्त्विक वस्तुअें क्यों न खायें, परन्तु अुनमें भी स्वाद तो है
ही। यदि हम अुसके वश होकर खायें, खानेमें सन्तुलन न रखें, तो सात्त्विकसे सात्त्वि[क]
वस्तु भी दुःख, रोग और दुर्गन्ध पैदा करनेवाली होगी और अिसलिअे राजसी [illegible]
हुअे बिना नहीं रहेगी। लड्डू मिठाअी है अिसलिअे यह अपने पर हद खानेवाले[को]
[illegible] करेगा; अुसी तरह आम सात्त्विक फल होने पर भी यदि हम अुस पर [illegible]
खायेंगे तो वे भी हमें अुतने ही दुःखी करेंगे [illegible], [illegible] और [illegible]
[illegible] देंगे।

लूटे और मारी अन्नको सामग्री बना गया है। मदिरा और मांसाहार वर्जित हुअे [illegible] जब हम जूठी पत्तलें चाटते देखते हैं तो हमें घृणा होती है। परन्तु अंडे [illegible] हम भी जब [illegible] [illegible] जाते हैं, तब और क्या करते हैं? [illegible] हम अपने पेटको [illegible] बनाते हैं, सड़ाते हैं और [illegible] बना देते हैं।

सात्त्विक आहारका विचार करते समय अिससे भी अधिक बारीकीमें जाना पड़ेगा। हम अपना आहार कमाते किस तरह हैं? औमानदारीसे प्राप्त की हुअी सूखी रोटी और मिर्च सात्त्विकताकी किसी व्याख्यामें आये या न आये, तो भी वह सात्त्विक ही है। अुसे खाकर मनुष्य सुखी, सन्तुष्ट और प्रेमपूर्ण बनेगा। क्योंकि अुसने अकेली रोटी ही नहीं खाअी है, बल्कि सचाअी और मेहनतकी सुवास भी खाअी है। अिसके विपरीत हम केवल सात्त्विक फलों पर गुजर करें, परन्तु हमारा धन्धा पापका हो, तो हमने फलोंके साथ साथ पाप भी खाया है। अिसलिअे अुसकी दुर्गन्ध हमारे जीवनमें से निकले बिना कैसे रहेगी? साफ शुद्ध दूध पिये तो भी अुससे जहरके सिवा और क्या पैदा होगा?

अिसी प्रकार हमें यह भी देखना पड़ेगा कि हम अपने आहारकी वस्तुअें कहांसे लाते हैं और अुनके अुत्पादनमें स्वदेशीके सिद्धान्तका पालन करते हैं या नहीं। क्या हम अुन्हें प्राप्त करनेमें स्वावलम्बनका त्याग करके बाजारके जालमें फंसते हैं? अुनके अुत्पादनमें गांवके लोगोंको अपने हकका हिस्सा लेने देते हैं या अुनके पेट पर पट्टी बांधकर मशीनोंकी शरणमें जाते हैं? यह विचार न करें तो भी सात्त्विक अन्न असात्त्विक बन जायगा।

और अन्तिम दृष्टि है यज्ञकी। अर्थात् हम केवल खानेकी ही बात समझते हैं या देनेकी अुदारता भी दिखाते हैं? औश्वरकी कृपासे हमें जो आहार मिला है, अुसे ग्रहण करते समय यदि आसपास कोअी भूखा हो तो क्या अुसे याद नहीं करना चाहिये? खाते समय कोअी अतिथि-अभ्यागत आ पहुंचे तो हमारे मनमें क्या विचार आता है? हमारा हृदय भीतरसे प्रसन्न होता है या मनमें चोरीकी यह भावना अुठती है कि मुश्किलसे खाने बैठे थे, बीचमें यह आफत कहांसे आ गअी? छोटोंको हिस्सा देना पड़ेगा, अिस चोरीसे बड़े लोग छिप-छिपकर खा लेते हैं अथवा अुन्हें देकर खुद खानेका सूक्ष्म आनन्द भोगते हैं? गीताजीमें अिस तरह मनकी चोरीसे खाये हुअे अन्नको चोरीका अन्न कहा गया है और अुपदेश दिया गया है कि "अपने अकेलेके लिअे कभी भोजन न बनाओ। भोजन बनाओ तो अुसमें से पहले यज्ञ करो, जिसे देना अुचित हो अुसे दो और फिर जो बचे अुसे अमृत मानकर खाओ। यज्ञ करनेके बाद जो बचता है वही अमृत है, वही सात्त्विक अन्न है।"

यदि हम अपना जीवन सात्त्विक और सेवकके योग्य बनाना चाहते हैं, तो ये सारे सिद्धान्त अमलमें लाने चाहिये। यह आशा नहीं रखी जा सकती

केवल सात्त्विक मानी जानेवाली वस्तुअें खा लेनेसे हमारे जीवन अेकदम अुन्नत हो जायेंगे। आश्रमी आहार खा लेनेसे ही हम बड़े सिद्ध बन गये, अैसा ढोंग करेंगे तब तो समझ लीजिये कि हम खड्डेमें ही पड़ गये।

यह सब जानने और विचारनेके बाद भी जो पदार्थ हम खाते हैं, अुनके चुनावमें विचारहीन होना किसी हालतमें ठीक नहीं। सात्त्विक प्रकारका आहार पसंद करके अुसीको खानेका आग्रह रखनेमें बड़ा लाभ है, और न रखनेमें बड़ी हानि है।

प्रवचन १०

कैसे खाना चाहिये?

आज हम अिस बात पर विचार करेंगे कि हमें किस ढंगसे खाना चाहिये। खानेके ढंगमें आश्रमके नाते कोअी विशेषता हो सो बात नहीं, यहां जिस ढंगसे हम चलना चाहते हैं, वह ढंग सभी स्वास्थ्य चाहनेवालोंका होता है, और होना चाहिये।

अिसमें सबसे पहली बात यह है कि हमारा खूब चबाकर खानेमें विश्वास है। हमें अीश्वरने सुन्दर मजबूत दांत दिये हैं। वे बाघ और भेड़ियेकी तरह बाहर निकले हुअे, लम्बे लम्बे और तीखे नहीं हैं, परन्तु मुंहके अन्दर व्यवस्थित रूपमें रखे हुअे हैं। अिसलिअे यह तो स्पष्ट है कि वे किसीको काटनेके लिअे नहीं, परन्तु खुराकको चबानेके लिअे ही हैं।

शरीरशास्त्री कहते हैं कि हमारे आमाशयकी बनावट अैसी है कि वह साबुत खुराकको पचा नहीं सकता, परन्तु जो अच्छी तरह चबानेके बाद भीतर आये अुसीको पचा सकता है। वे हमें यह भी सिखाते हैं कि हम ज्यों-ज्यों कौरको चबाते हैं, त्यों-त्यों हमारे मुंहका रस अुसमें मिलता है और न पच सकनेवाला स्टार्च (श्वेतसार) मीठी, सुपाच्य शर्कराके रूपमें बदल जाता है। हम ज्यों-ज्यों खानेको चबाते हैं त्यों-त्यों मिठास बढ़ती है, यह किसका अनुभव नहीं है? अिसका अर्थ यह हुआ कि पचनेकी क्रियाका आरंभ मुंहमें ही हो जाता है। चबानेमें मेहनत तो होती है, परन्तु यह जरूरी मेहनत होनेके कारण कुदरतने अुसके साथ मिठास जोड़ दी है।

फिर भी लोगोंको चबानेमें अरुचि होती है। अन्य सब शरीर-श्रम करनेमें लोगोंकी अरुचि हो यह तो समझमें आता है, परन्तु चबानेमें अरुचि होना जरा भी समझमें नहीं आ सकता। मनुष्य अस्वादके सिद्धान्तकी हंसी उड़ानेवाला और स्वादका आदी हो, तो अुसे कौरका स्वाद जैसे बने वैसे ज्यादा समय तक भोगनेकी अिच्छा रखनी चाहिये। कौरको अधूरा चबाकर पेटमें अुतार देनेसे अुसे क्या मजा आ सकता है? अैसा करके तो वह खुद ही अपनी स्वादकी लज्जत घटाता है। फिर भी मनुष्यको स्वादके आनन्दसे आलस्यका रस अधिक मीठा लगता मालूम होता है।

विचार करने पर क्या असा नहीं लगता कि रसोअीकी हमारी सारी कलाका विकास मानो चबानेकी भयंकर मेहनतसे बचनेके लिअे ही किया गया है? पाक-कलामें कुशल बहनें दिन-दिन अपनी रोटियोंको अधिक पतली, फोसरी और कोमल बनाती रहती हैं। असी नरम रोटियोंको भी खानेसे पहले दालमें भिगोकर अधिक नरम बना दिया जाता है। अिससे चबानेकी मेहनत ही खतम हो जाती है। आटेमें रहा स्टार्च शक्कर बने बिना — पचे बिना आमाशयमें पहुंच जाता है। बेचारी जीभ भी अपने हककी मिठास खो बैठती है। फिर जीभ झगड़ा न करे, अिसके लिअे पकानेवाले कितनी करामातें करते हैं! अुसे शक्कर खिलाते हैं, मुरब्बे और अचार चटाते हैं और दाल-सागको तो छहों रसोंके मिश्रण और अुपमिश्रणका काढ़ा बना डालते हैं। अितने भी जीभ खुश न हो तो अुसे शक्कर-घीसे तर मिठाअियां खिलाते हैं! खुशामदसे बिगड़ी हुअी जीभ ज्यों-ज्यों अधिक नाराज होती जाती है, त्यों-त्यों हम भी मिठास और तीखेपनका लालच बढ़ाते जाते हैं!

यह बात आप सब समझ लें और अपनी स्वीकृति दें, तो हम आश्रमकी खुराकमें मुख्य वस्तु अैसी ही रखना चाहते हैं जो चबाअी जा सके। अिसलिअे हम रोटी और भाखरी ज्यादा पसन्द करेंगे। फुल्के बनायेंगे, परन्तु कागज जैसे नहीं बनायेंगे। अुन्हें हम अच्छी तरह चबायेंगे और अुसमें से जो मिठास निकलेगी वह हमारे अधिकारकी होनेके कारण हम आनन्दसे अुसका अुपभोग करेंगे। दाल-सागमें भी हम जीभको ललचानेके लिअे तरह तरहके मसाले नहीं डालेंगे। अनाज और दालके पचनेके लिअे अूपरसे नमक मिलानेकी जरूरत होती है, अैसी आहारशास्त्रियोंकी राय है। अुसे मानकर हम आवश्यक मात्रामें नमक लेंगे। मसाले तो औषधियां हैं। वे रोग मिटानेके लिअे काममें लाने जाने चाहिये। संयोगवश हम बीमार पड़ें तब अुनका अुपयोग करेंगे, परन्तु जीभको धोखा देनेके लिअे हम अुन्हें क्यों काममें लें?

रोजके आहारमें खास तौर पर विचार करने योग्य दूसरी चीज भात है। भात हम लोगोंकी प्रिय और मानी हुअी वानगी है। अतिप्राचीन कालसे भातका हम भारतीयोंको शौक रहा है। कुछ प्रान्तोंमें तो भात ही मुख्य आहार है। हमारे अिलाकेमें भी दोपहरके भोजनमें लोग भात ही खाते हैं। भात न मिले तो खानेसे अुन्हें संतोष नहीं होता।

परन्तु हमारे अिस पुराने और प्रिय भातके सम्बन्धमें आहारशास्त्रियोंने शंका खड़ी कर दी है। अुसमें पोषक तत्त्वोंकी मात्रा कम है और खुमारी पैदा करनेवाला स्टार्च ही अधिक है। जो भातसे पेट भरते हैं अुन्हें नशा चढ़ता है और खानेके बाद कुछ देर तक कोअी काम नहीं सूझता। अुन्हें नींद और आलस्यमें करवटें बदलते रहना पड़ता है। अुसमें पोषणके तत्त्व कम होनेसे बहुत अधिक मात्रामें खाने पर ही पेटको संतोष होता है। अिसलिअे भात खानेवालोंको पेट तन जाने तक खानेकी आदत पड़ जाती है। परिणाम-स्वरूप आमाशयकी थैली तनकर बड़ी हो जाती है और वह भरकर तन न जाय तब तक खानेवालोंको तृप्ति होती ही नहीं। फिर तो अैसे लोग रोटी या

मिष्टान्न खायें तो भी पेटके तन जाने तक खाये बिना अुन्हें संतोष नहीं होता। और अुसे वे पचा नहीं सकते, अिसलिअे रोगोंके शिकार होते हैं।

और फिर भात खानेका हमारा तरीका भी कैसा है? हम अुसे दाल, कढ़ी वगैरामें मिलाकर मुंहमें डालते हैं। सादा भात हो तब तो दांतकी पकड़में थोड़े-बहुत दाने आ जानेकी संभावना रहती है, परन्तु दालमें मिलाकर तो हम हरअेक दानेको चबाये जानेके खतरेसे पूर्ण मुक्ति दे देते हैं! भात हमारे लोगोंको अच्छा लगता है, अिसका कारण कदाचित् भातका स्वाद नहीं है। अुसमें जो भी स्वाद होता है अुसे तो लोग कूटकर, भूनी निकालकर और मांड निकालकर बिलकुल हलका कर देते हैं और अिस हलके स्वादको भी दाल वगैरामें मिलाकर पूरी तरह नष्ट कर देते हैं। मुझे तो लगता है कि भातमें चबानेका कष्ट नहीं अुठाना पड़ता, वह गटसे गलेके नीचे अुतारा जा सकता है, अिसीलिअे वह हम लोगोंको पसंद आ गया है। अुसके अच्छा लगनेका दूसरा कारण बहुत करके अुसकी मादकता भी हो सकती है। भात खाकर खानेवालेका पेट तन जाता है और अुसे लेटना पड़ता है। परन्तु अिस स्थितिमें मनुष्यको अेक प्रकारका सुख मालूम होता है। व्यसनी लोगोंको अपने व्यसनोंमें जो लज्जत आती है, अुससे मिलती-जुलती ही यह लज्जत मालूम होती है।

भातके विषयमें ये विचार सुनकर आपको बहुत आश्चर्य तो होगा। परन्तु अब आप समझ सकेंगे कि आश्रमकी खुराकमें से हम अुसे प्रधान पदसे क्यों हटा देना चाहते हैं। अुसे आप बिलकुल तो नहीं छोड़ेंगे, परन्तु हिम्मत हो तो अुसे दालमें मिलानेका रिवाज बन्द कर दीजिये और रूखा खाकर अुसके भीतरका थोड़ा स्वाद पहचाननेका प्रयत्न कीजिये।

भातकी मात्रा घटायें तो शुरूमें सावधान रहनेकी जरूरत है। भात भर भरकर बड़ी बनी हुअी पेटकी थैलीको ठोस खुराकसे अुतनी ही तंग होने तक भरने लगें, तो अपच होनेसे आप परेशान हो जायेंगे। भूखे रहनेका आभास हो तो भी थोड़े दिन तक आप सावधानी रखें और यह देखें कि ठोस खुराककी मात्रा बढ़ न जाय। थोड़े ही दिनोंमें आपका पेट नअी खुराकका आदी हो जायगा और फिर थोड़ी मात्रासे भी आपको तृप्ति होने लगेगी।

आहारशास्त्रियोंकी अेक और सलाह भी मानने लायक है। वे कहते हैं कि आगसे अपनी खुराकके भीतरी तत्त्वोंको जलाकर नष्ट न कर डालिये। हमें यह सलाह माननेमें आपत्ति नहीं हो सकती। खुराकको नरम बनाकर दांतका कष्ट बचाया न जाय, यह हमारा निश्चय हो जानेके कारण जो चीजें पकाये बिना खाअी जा सकती हैं अुन्हें हम मूल रूपमें ही खायेंगे। अनेक प्रकारकी साग-भाजियां और फल कुदरती रूपमें बिना पकाये खाये जा सकते हैं, फिर भी अुन्हें हम क्यों पकाते हैं यह सचमुच समझमें नहीं आता। केवल अनाज ही अैसे होते हैं जिन्हें पीसकर और अुबालकर न खायें तो हमारा पेट पचा नहीं सकता। अुन्हें भी जरूरतसे ज्यादा न पका डालनेकी हम सावधानी रखेंगे।

आप देखते हैं कि हमारी खानेकी चीजें तो वही हैं, केवल अुन्हें खानेके ढंगमें फर्क पड़ जाता है। हम बहुतसी चीजोंको पकाकर निर्जीव बनाये बिना लेना पसंद करते हैं, और जिन्हें आग पर पकाते हैं अुन्हें भी अत्यन्त नरम नहीं बना डालते। पुराणवादी मन यह भोजन देखकर घबड़ा अुठता है। अुसे सब कुछ विचित्र और नया नया लगता है। वह शिकायत करता है कि किसलिअे अुससे यह बड़ा त्याग कराया जाता है? किसलिअे अुसके स्वाद लूट लिये जाते हैं? वास्तवमें अुसकी शिकायत निर्मूल है। खुराककी मूल वस्तुअें तो वही हैं। आम तौर पर लोगोंके खानेमें साग, फल वगैरा कम होते हैं, या बिलकुल होते ही नहीं। हमने तो अुलटे शरीर-श्रम करके अुन्हें अधिक मात्रामें भोजनमें दाखिल किया है। स्वादमें या दीखनेमें हमारा खाना भिन्न है परन्तु गुणमें घटिया नहीं है; अुलटे बढ़कर ही है। पोषक तत्त्वोंकी दृष्टिसे तो व श्रेष्ठ है ही। अितना सही है कि यह भोजन हम लपालप खाकर अुठ नहीं सकेंगे। ह अुस पर काफी समय खर्च करना होगा और चबानेका कष्ट अुठाना पड़ेगा। परन्तु अि मेहनतका बदला अुसमें से निकलनेवाले मधुर रसों द्वारा हमें मिल जायगा।

प्रवचन ११

अमृत-भोजन

आहारके बारेमें हमने कअी दृष्टियोंसे विचार कर लिया। हमने अिसे अमृत-भोजनका सुन्दर और पवित्र नाम दिया है। अैसे पवित्र नामको शोभा देनेवाले ढंगसे ही हमें अुसे ग्रहण करना चाहिये।

भोजन करनेकी दो पद्धतियां हैं। अेक मनुष्यकी और दूसरी पशुकी। पशुके पेटमें भूख हो और आंखके सामने खानेकी चीज हो, तो फिर वह खानेके सिवा दूसरा विचार ही नहीं करेगा। परन्तु मनुष्यके लिअे तो ये दोनों बातें अिकट्ठी होनेके बाद भी कुछ विचार करना बाकी रहता है। अुसे भोजनमें अमृतकी भावना अुत्पन्न करनी है।

आप विचारमें पड जाते हैं — "यह क्या बला है? भोजनके समारोह रखे जाते हैं तब लोग भोजनके स्थानको चौक पूर कर और धूप आदि जला कर खुशनुमा बनाते हैं। क्या अैसा ही कुछ करना है?"

नहीं, अैसे समारोह तो किसी किसी दिन शोभा देते हैं। हम तो रोजके भोजनको अमृत बनाना चाहते हैं। हम सब भोजन करनेके लिअे साथमें बैठते हैं। साथ बैठनेमें जो आनन्द पैदा होता है, वह हमारे सादे और स्वच्छ अन्नको अमृत बना देता है।

आप अुतावले होकर कहेंगे, "ठीक है। खाते खाते हम खूब बातें करें, विनोद ें और प्रेमसे अेक-दूसरेको आग्रह करें, तो ही खानेमें सच्चा आनन्द आ सकता है।"

आपका अनुमान ठीक नहीं है। आग्रहको लोग प्रेमकी निशानी मानते हैं परन्तु अुसे बहुत हलकी चीज मानते हैं। कअी बार तो अुसे प्रेमके बजाय झूठा बड़प्पन

दिखानेका ही साधन बनाया जाता है। असंस्कारी मनुष्य आपसमें झगड़ा करके, अेक-दूसरेसे खींचतान या मारपीट करके नीचे दर्जेका मजा लेते हैं। अुसी तरहका मजा भोजनमें आग्रह करनेका माना जा सकता है। अिससे सच्चा आनन्द बिलकुल नहीं आता, केवल अन्नका बिगाड़ होता है और आग्रहके वश होनेवालेका पेट बिगड़ता है। यहां आश्रममें हम कोअी किसीसे आग्रह नहीं करते। अिसलिअे कोअी आग्रहकी प्रतीक्षा नहीं करता। सब अपनी भूखके अनुसार निःसंकोच मांग लेते हैं।

सब मनुष्यको शोभा देनेवाली भोजन-पद्धति कौनसी है? आश्रमकी हमारी पद्धतिमें अैसी क्या विशेषता है?

आप देखते हैं कि हम यहां अपनी सारी मण्डलीके साथ बैठकर भोजन करते हैं। जिसके मनमें आया वह भोजनालयमें घुस गया और छीना-झपटी करके खा लिया, यह पद्धति पशुओंकी है। यों तो आप अकेले अेक कोनेमें छिपकर खा लें, तो भी पेट भर जायगा। परन्तु केवल पेट भरनेसे हमें सच्ची तृप्ति कैसे होगी?

हमारे यहां भोजनका समय निश्चित किया हुआ है। घंटी बजाकर वह समय सब आश्रमवासियोंको सूचित किया जाता है। घंटी सुनकर सब अपने अपने कामोंसे निबटकर जल्दी भोजनालयमें पहुंच जाते हैं। कड़ाकेकी भूख लगी होनेके कारण भोजनालयकी तरफ आनेमें आनन्द होता है। परन्तु सब मित्र साथमें अमृत-भोजन करने बैठेंगे, अिस विचारसे तो यहां आनेमें मन कुछ और ही प्रसन्नता अनुभव करता है। देर करेंगे तो दूसरे सब मित्रोंको तकलीफ होगी, अिस विचारसे हममें से किसीको देर करना अच्छा नहीं लगता। भोजनके समय कोअी दिखाअी न दे तो सब मित्र अुसे याद करते हैं, अुसकी राह देखते हैं, अुसकी चिन्ता करते हैं।

भोजनालयमें व्यवस्थित बैठ जानेके बाद हमारे कुछ मिनट बड़ी परीक्षामें गुजरते हैं। परोसनेवाले फुरतीसे परोसते हैं, फिर भी सब चीजें परोसनेमें कुछ समय तो लगेगा ही। अेक तो हमें घरमें अिस तरह लटकते बैठे रहनेकी आदत नहीं होती, और फिर पेटमें भूख होती है। भूखके आगे हम लाचार हो जाय तब तो यह कुछ अनुचित दलीलें हमारे दिमागमें पैदा करती है: 'अिस तरह बैठे रहनेसे हमारा वक्त खराब होता है, हमारा खाना ठंडा हो जाता है' वगैरा। कोअी सोचेगा, यहांका नया और विचित्र भोजन तो जैसे-तैसे सहन कर लें, परन्तु यह प्रतीक्षा करते रहना कैसे बरदाश्त हो सकता है? परन्तु नहीं, हम अिस तरह धीरज नहीं खोयेंगे। सब आश्रमवासी अपना भोजन अेकसाथ आरम्भ कर सकें, अिस आनन्दके लिअे हम धीरज रखेंगे। अिसमें समय तो जायगा, परन्तु जब सारी चीजें परोसी जाने पर सब आश्रमवासी साथ मिलकर परमेश्वरकी प्रार्थना करेंगे और साथ भोजन शुरू करेंगे, तब कितना आनन्द आयेगा? सचमुच अुस क्षण हमारे सारे धीरजका बदला मिल जायगा।

"खाते समय भी प्रार्थना करनी होती है?" — किसीके मनमें शंका अुठेगी। "किसी बड़े महत्त्वके और गंभीर कार्यका आरम्भ प्रार्थनासे किया जाय, यह तो समझमें

आ सकता है। लेकिन भोजन जैसे अेक मामूली कामके आरम्भमें प्रार्थना कैसी?" परन्तु नहीं, भोजनको हम अेक तुच्छ, निकम्मा, सिर पर आ पड़ी आफत, किसी न किसी तरह पूरा कर डालने जैसा काम नहीं बनाना चाहते। जिस तरह हम सब साथ मिलकर पढ़ाओ करते हैं, साथ मिलकर सेवा करते हैं, अुसी तरह साथ मिलकर अमृत-भोजन ग्रहण करते हैं। वह हमारा अेक गंभीर और महत्त्वपूर्ण कार्य ही है। अुससे हम शरीरका पोषण लेते हैं; अितना ही नहीं, साथ बैठकर भोजन करनेसे हमारे पारस्परिक प्रेम और मैत्रीको भी पोषण मिलता है। हमारी आत्माको अैसा बल मिलता है कि "हम अकेले नहीं हैं, समान भोजनसे, समान विचारोंसे पोषित हमारा अेक मण्डल है, हम अपने देशके लिअे बड़े बड़े पराक्रम करेंगे।" हमारा प्रार्थनाका मंत्र हमारी अिन भावनाओंको पोषण देनेवाला है।

हमारा भोजन सादा और सस्ता है, परन्तु वह हमारा अमृत-भोजन है। वह हमारे लिअे केवल भोजन नहीं है, वह तो हमारी शिक्षा है। हमें आशा है कि अिसीमें से हमारे देशकी जनताके लिअे सर्वसामान्य राष्ट्रीय आहारकी शोध होगी।

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

तीसरा विभाग

समय-पालनका धर्म

प्रवचन १२

आकाशका अमृत

मैं अमृत-भोजनकी बात कर रहा था, तभी मेरे मनमें आया कि आपका ध्यान आकाशके अमृतकी ओर जल्दीसे जल्दी खींचूं। हम सब चाहते हैं कि देशमें सबको अैसा भोजन मिलने लगे, जिसका अमृत कहकर वर्णन किया जा सके। परन्तु वह दिन कब आयेगा? अुसके लिअे हमारा महान प्रयत्न कब सफल होगा? परन्तु आकाशका अमृत तो रोज रातको बरसता ही रहता है। अुजियाली रातमें चन्द्रमा अमृत बरसाता है और अंधेरी रातमें कोटि-कोटि तारागण अमृत बरसाते हैं। अुस अमृतसे पेट तो नहीं भरता, परन्तु हमारी थकान अुतार कर वह हमें ताजगी और आनन्द प्रदान करता है। अुसे लूटनेकी किसीको मनाही नहीं है। जो लूटते नहीं वे अपनी लापरवाहीसे — अपनी भूलसे वह लाभ गवाते हैं।

आप देखते हैं कि आश्रममें हम सब रातको अमृत बरसानेवाले आकाशके नीचे खुले चौकमें सोते हैं। शरीरमें कुछ व्याधि हो अथवा बरसात जैसी कोअी कुदरती रुकावट हो, अुसके सिवा खुलेमें सोनेका आनंद खोनेके लिअे यहां कोअी भी तैयार नहीं है।

मैं देखा करता हूं कि नये आये हुअे मित्रोंमें से भी थोड़ेसे हमारी अमृतकी लूटमें रोज शरीक होने लगे हैं। शुरूमें तो आप घरमें अथवा चबूतरे पर बिस्तर करते हैं। बिस्तर करते समय आपके मनमें क्या विचार चलते होंगे सो बताअूं? "अरर! बिलकुल खुलेमें तो कैसे सोया जाय? हाथ-पांव अकड़ जाय तो? आश्रमवाले सब पागल होते हैं, अैसा लोगोंका कहना गलत नहीं मालूम होता! ये सब लोग तो आदी हो गये हैं, अिसलिअे अिन्हें कुछ नहीं होता। पर मैं अुनकी नकल करने लगूं तो बीमार पड़ जाअूं। मुझे सर्दी लग जाय, बुखार आ जाय, मेरी हड्डी-हड्डी दुखने लगे।" फिर बिस्तर करके आप दो घड़ी बातचीत करनेके लिअे खुलेमें लेटे हुअे नक्षत्रोंको घूमते निरखते हैं। फर फर चलनेवाली हवा आपके अंग अंगमें गुदगुदी पैदा करती है। आपको पता नहीं चलता परन्तु आकाशके अमृतका आपको नशा चढ़ता है। जब बातें करके आप बिस्तर पर सोने जाते हैं, तब बिस्तर आपको काटने दौड़ता है। अैसा लगता है मानो घरकी बन्द हवा आपको जला रही है। सिरके अूपरका छप्पर आंखों पर दबी हुअी पट्टीके समान लगने लगता है। और अन्तमें किसीकी सलाहके बिना निश्चय होता है। वह चुपचाप बिस्तर समेटकर अुठता है और चौकमें अच्छी जगह देखकर अपना बिस्तर लगा लेता है।

देर-सबेर सबको यह मालूम हुअे बिना नहीं रहेगा। थोड़े दिनमें ही यह हालत हो जायगी कि कोअी आपको घरमें बांधकर रखे तो भी आप खुलेमें सोनेको तैयार

अिसी पट पर जहां हमारे जैसे मनुष्योंके समूह सो रहे हैं, वहीं पशु सो रहे हैं, पेड़ पर घोसलोंमें पक्षी सो रहे हैं। हम सब भाअी धरती-माताकी गोदमें आनंदसे मीठी नींद ले रहे हैं और आकाश-पिता हम सबके सिर पर छत्ररूपमें जाग रहे हैं। अूपर बताये सब तत्त्व अेकत्र हों तभी आकाशका अमृत अुनमें से अुत्पन्न होता है।

आश्रममें अैसे आकाशी अमृतके भोक्ता बन कर जब हम अपने गांवोंमें और घरोंमें जाते हैं, तब सचमुच हमारा दम घुटने लगता है। हम देखते हैं कि वे घर और गांव किन्हीं दूसरे ही सिद्धान्तोंसे बनाये गये हैं। अैसा लगता है मानो वे अिसी सिद्धान्तसे बनाये गये हों कि जहां आकाश न दिखाअी दे, हवा न छूअे, प्रकाश न मिले, वही घर अच्छा, वही गांव अच्छा है। गांवोंके लिअे चौड़े रास्तों और मुहल्लोंकी जरूरत नहीं मानी जाती। दरवाजे हों तो वे भी रातको बिलकुल बन्द कर दिये जाते हैं। आकाशी अमृतका आनन्द भोगनेवालोंका वहां दम घुटना स्वाभाविक है।

परन्तु अिस घुटनसे घबरानेकी जरूरत नहीं। कैसे भी हों, फिर भी वे हमारे घर हैं। वही हमारे गांव हैं। हमारा दम घुटेगा तो भी हम अुनसे अूबकर भागेंगे नहीं। हमें सेवा तो अंतमें अुन्हीं गांवोंकी करनी है न? हमारी घुटनेवाली आत्मा हमारी आंखें खोलेगी, हमारी बुद्धिको तेज करेगी और हमारी घरोंकी रचनामें हवा और आकाशको कैसे दाखिल किया जाय, अिसकी हममें सूझ पैदा करेगी। गांवकी तंगीमें वृद्धि करना छोड़कर बाहर खेतमें निकल पड़नेकी हममें तड़प पैदा होगी।

खुलेमें सोनेसे बीमार पड़ेंगे, यह भ्रम जब लोगोंके दिलोंसे मिट जायगा और अुन्हें भी हमारी तरह आकाशके अमृतका शौक लग जायगा, तब वे तंग गांवोंको छोड़ कर खेतोंमें जाकर घर बनायेंगे और वे घर आजसे बिलकुल भिन्न प्रकारके होंगे।

अिसलिअे आश्रमसे घर जानेका मौका आने पर कोअी जरा भी घबराये नहीं। आपको आकाशी अमृतका जो शौक लगा है अुसकी छूत दूसरोंको लगानी है, अिस विचारसे दुगुने अुत्साहके साथ वहां जाअिये। आजके आज मकान गिरा देने या गांव जला देनेकी जरूरत नहीं, परन्तु अितना तो आज ही करना — बगलमें बिस्तरा दबाकर खेतमें सोने निकल पड़ना और अपने साथ घरके बच्चों और मुहल्लेके मित्रोंको भी समझाकर ले जाना।

नहीं होंगे। आप अनुभवसे देखेंगे कि खुलेमें सोनेसे बीमार पड़ जानेकी मान्यता निरा भ्रम ही है। अुलटे खुलेमें — आकाशके अमृतमें — रातभर स्नान करनेसे आपको मीठी नींदका यह अनुभव होगा जो पहले कभी नहीं हुआ होगा। आपको लगेगा मानो आज तक आपने कभी गहरी निद्राको जाना ही नहीं।

आहार कितना ही विचारपूर्वक लें तो भी अकेले आहारसे ही हमारा स्वास्थ्य नहीं बनता। सूर्यकी धूप, खुली हवा, आकाशसे बरसनेवाला अमृत, ये सारे तत्त्व भी हमें बड़ी ताजगी और चेतना देनेवाले हैं। यह अेक भ्रम है कि अिन तत्त्वोंसे मनुष्य बीमार होता है। हमारे पुराने लोग रोगी मनुष्यको अंधेरे और बन्द हवावाले मकानमें रखना अच्छा समझते हैं, परन्तु सही बात अिससे अुलटी है। ताजी हवा बीमारीको मिटानेमें मदद करती है और मनुष्य रोग-पीड़ित हो तब भी अुसे आराम देती है। कुछ क्षय जैसे रोगसे पीड़ित रोगियोंको तो खुलेमें सोने और सूर्यस्नान करनेकी खास तौर पर सिफारिश की जाती है। अिसलिअे अमृतमें सोनेसे बीमार पड़ते हैं, यह भ्रम मनसे बिलकुल निकाल देना चाहिये।

अच्छा है कि अभी गरमीका मौसम है। अिस मौसममें किसीको शीतल जलसे स्नान करनेकी सिफारिश नहीं करनी पड़ती, और रातको आकाशके मधुर अमृतमें सोनेकी भी सिफारिश नहीं करनी पड़ती। परन्तु हम मनुष्य विचित्र प्राणी हैं। हम लोगोंमें बहुतसे अितने नाजुक हो जाते हैं कि गरमीमें भी ठंडे पानीका स्नान सहन नहीं कर सकते। अुन्हें गरमीकी मन्द मधुर हवामें भी रजाअी ओढ़नेको चाहिये। अैसी आदतवाले कोअी भाअी आपमें होंगे, तो अुनके शुरूके दो दिन जरा कठिन बीतेंगे। शायद सरदीका असर भी मालूम होगा। परन्तु अिससे घबराअिये नहीं। आदत डालकर जैसे चमड़ी अितनी कमजोर बनाअी जा सकती है, अुसी प्रकार आदत डाल कर अुसे मजबूत भी बनाया जा सकता है, और बनाना चाहिये। आज गरमीकी अनुकूल हवामें आप अिसकी शुरुआत करेंगे, तो जाड़ा आने तक ठंडमें भी आकाशके नीचे सोने लायक हिम्मत और शक्ति आपमें आ जायगी।

आकाशके अमृतके प्रेमियोंको अेक सूचना शुरूसे ही देना जरूरी है। खुलेमें सोयें तो अेक पर अेक कपड़े ओढ़कर और वह भी मुंह पर ओढ़कर अपना सोना बेकार न बनाअिये। सोते समय कितना ओढ़ें, अिसका ठीक विचार लोग नहीं करते और गुदड़ी पर गुदड़ी ओढ़ते चले जाते हैं। जाड़ेमें कुछ ओढ़ना पड़े यह ठीक है, परन्तु हम यह दृष्टि भूल जाते हैं कि हमें अपनी चमड़ीकी सहन-शक्तिको कम नहीं होने देना चाहिये।

चमड़ीको तालीम द्वारा अैसी बना लेना चाहिये कि मामूली ठंड हमें बुरी न लगे, बल्कि मीठी लगे। ठंड भी बहुत अधिक न हो तब बड़ी आरोग्यवर्धक होती है। ठंडके स्पर्शसे चमड़ी कैसी सिकुड़ती है? शरीरकी भीतरी गरमी कैसी बढ़ जाती है? और मुंहसे कितनी गरम भाप निकलती है? नसोंमें गरमागरम लहू कैसा दौड़ने

तक आश्रममें रहें फिर भी वे ही जम्हाअियाँ, नींदके वे ही झोंके और वे ही नींदके दूसरे पारायण कायम रहेंगे।

अिसलिअे कोअी यह न मान ले कि जहाँ पुराने पुराने जोगी भी जम्हाअियाँ लेते हैं वहाँ हमारी क्या बिसात है? अुनकी जम्हाअियोंके बावजूद आश्रमका यह आग्रह नवजीवन देनेवाला है और हम सबके अपना लेने जैसा है।

हमें जल्दी जागनेकी आदत डालनी है परन्तु कोअी यह न मान ले कि शरीरको पूरी नींद नहीं देनी है। स्वस्थ मनुष्यके शरीरको ७ से ८ घंटेकी नींद मिलनी चाहिये और वह हमें अपने शरीरको देनी ही है। हमारा जितना आग्रह जल्दी जागनेका है, अुतना ही आग्रह पूरी नींद लेनेका भी है। जैसे हमारा सवेरे जल्दी अुठनेका आग्रह है वैसे रातको देर तक न जागनेका भी आग्रह है होना ही चाहिये। हमारे आश्रममें रातको सोनेकी घंटी बजनेके बाद शोर करना हमारा अपना और हमारे सब आश्रमवासियोंका भी द्रोह करनेके समान माना जाता है।

जो यह विचार नहीं करते कि जीवनका सच्चा आनन्द क्या है वे रातको देर तक जागकर गपशप लगाते हैं और अुसमें आनंद मनाते हैं। अिष्ट-मित्रोंके साथ आरामसे बातचीत और हँसी-मजाक करनेमें आनन्द जरूर है और वह हम भी चाहिये। परन्तु हम अुसमें सन्तुलन रखना चाहते हैं। दूध जैसी सुपाच्य वस्तु भी मर्यादासे ज्यादा पिये तो हानिकारक सिद्ध होगी। बातचीत और हँसी-मजाककी मात्राको मर्यादामें रखनेसे ही अुसमें मिठास और सरसताका अनुभव होता है। अुसकी मात्राको मर्यादामें रखकर हम जल्दी जागनेका आनन्द भोगना चाहते हैं क्योंकि अुसे हम अधिक अूँचा आनन्द मानते हैं।

हमारा यह दूसरा आग्रह न जाननेके कारण लोगोंकी आश्रमके बारेमें कुछ अैसी कल्पना है कि यहाँका जीवन अत्यन्त कठोर और कष्टमय होता है। अुन्हें हम पर दया आती है — 'अरे, बेचारे आश्रमवासी! अुन्हें जल्दी जागना पड़ता है! अैसे जीवनमें बेचारे दुबले लोगोंके शरीर कैसे काम दे सकते हैं? बेचारे बीमार पड़े बिना कैसे रह सकते हैं?' [illegible] अनुसार वे हमें दुर्बल और बीमार मान लेते हैं और हम सचमुच हट्टेकट्टे और [illegible] हों तो भी वे यह देखनेको तैयार नहीं होते।

"परन्तु जल्दी जागनेसे फायदा क्या?" कोअी कहेगा। 'हम अपनी कुल नींद आठ घंटेसे ज्यादा नहीं होने देंगे। फिर हम जल्दी सोकर जल्दी अुठें या देरसे सोकर देरसे अुठें, अुसमें क्या फर्क पड़ जायगा? अथवा रातको खूब जागकर दिनको न सोकर कमी पूरी कर लें तो क्या अन्तर पड़ जायगा? अपना जीवन अपनी [illegible] बनने दें तब [illegible] हम आपकी आलोचनाके पात्र बनें होंगे, परन्तु अैसा न होने दें तब तक जल्दी अुठनेका आग्रह किसलिअे?"

जिस तरह जल्दी अुठनेवालोंका हमारा आग्रह [illegible] [illegible] नहीं, यह मैं स्वीकार करता हूँ। अपना जीवन [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible]

दूधमें शक्करकी तरह अुनकी स्मृतिमें अेकरस हो जाते हैं। वे ही काम और वे ही पाठ दोपहरकी धूप चढ़ जाने पर हमें तिगुने भारी मालूम होते हैं।

आजकल हमारे देशबंधुओंके आचरणमें अत्यन्त शिथिलता आ गअी मालूम होती है। सभ्य कहे जानेवाले लोग 'सूर्यवंशी' बन गये हैं। क्या अैसा नहीं लगता कि अुनका व्यवहार हमारी आबहवाके विपरीत है? वह हमारे आम लोगोंके स्वभावके भी विरुद्ध है। हमारे मेहनतकश पुरुषों और स्त्रियोंके जीवन देखें तो आज भी वे हमारी प्रजाका सच्चा स्वभाव प्रगट कर रहे हैं। हमारे किसानोंके घर और आम तौर पर गांवोंके सब लोगोंके घर आज भी प्रातःकालमें ही कैसे गूंज अुठते हैं! चक्की पीसना, छांछ बिलोना, पानीके बरतन मांजना, हल-बैल-गाड़ियां तैयार करना, गायोंको दुहना, गायोंके झुंड चराने ले जाना वगैरा काम वहां सबेरेसे ही कैसे होते रहते हैं, और नरसिंह मेहताकी प्रभातियोंके साथ ताल मिलाते रहते हैं!

ब्राह्म-मुहूर्तमें जागकर आत्मविद्याकी अुपासना करनेवाले हमारे प्राचीन कालके ऋषि-मुनियोंने यह प्रणाली डाली है और सब युगोंके महापुरुषोंने जिस प्रणालीको अपने जीवनमें अुतारा है। आज देखें तो पूज्य गांधीजी ब्राह्म-मुहूर्तमें प्रार्थना करनेके कितने आग्रही हैं, यह हम सब जानते हैं। परन्तु बहुत लोगोंको पता नहीं होगा कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ जैसे रसिक कविवर ब्राह्म-मुहूर्तके रसिया थे और अुनके अधिकतर गीत अिस पवित्र वेलाकी ही प्रसादी हैं। यह प्रणाली हमारे लोगोंका स्वभाव ही बन गअी है। जल्दी जागनेके विषयमें हमारे मनमें जन्मसिद्ध आदर होता है। अुसके पक्षमें कोअी तर्क ढूंढ़नेकी हमें अिच्छा ही नहीं होती। गाली देना या स्त्रीको पीटना जैसे समाजमें नीच काम समझा जाता है, वैसे ही हमारे देशमें देर तक सोना भी अनादरकी वस्तु मानी जाती है।

आप जानते हैं कि हमारे आश्रमके जीवनको दूरसे देखकर लोग भड़कते हैं और कठोर, शुष्क और नीरस कहकर अुसकी आलोचना करते हैं। फिर भी मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि अिन्हीं लोगोंको हमारे अैसे कठोर जीवनके लिअे आदर होता है। यदि हम सब जल्दी न जागें, देर तक सोते रहें, आलस्य और गप्पोंमें और ताशपत्ते खेलनेमें दिन और रातका बड़ा भाग बिताते हों और अैश-आराम करते हों, तो वे ही लोग हमें नालायक कहकर हमारी निन्दा किये बिना नहीं रहेंगे। कदाचित् हमें पत्थर भी मारें और आश्रममें से कान पकड़कर निकाल भी दें! सेवकके रूपमें हमारी कीमत कौड़ीकी हो जाय।

ब्राह्म-मुहूर्तमें जागनेकी आश्रमकी भावना आज मैंने आपके सामने रख दी है। कौशल्या माता रघुनाथ कुंअरको जगानेके लिअे जो प्रभाती गाती थीं, वही हम प्रार्थनामें कभी-कभी गाते हैं:

"जागिये रघुनाथ कुंअर, पछी बन बोले।
चन्द्रकिरण शीतल भअी, चकअी पिय मिलन गअी;
त्रिविध मन्द चलत पवन, पल्लव द्रुम डोले। — जागिये।"

यशोदा माता भी सुन्दर श्यामको छोटे बनाकर मगन खुश करके कैसे गाती थी?

"तुम जागो मोहन प्यारे,
सांवरी सूरत मेरे मन भाये,
सुन्दर श्याम हमारे।"

ये देवी माताएँ क्या अपने प्रिय बालकको दुःखी करना चाहती थीं? कभी नहीं। वे यह जानती ही नहीं थीं कि बच्चे जल्दी जागनेसे दुःखी होते हैं। अुन्हें अपने बालकोंको ऐसी शिक्षा देनेका अुत्साह और अुमंग रहती थी, जिससे अुनके बच्चे जल्दी जागकर आनन्द-स्नान करें, अपने अपने काम करें, गायोंके साथ वनमें और पहाड़ोंमें घूमकर साहसी और बलवान बनें, बड़े होकर पराक्रम करें, और जगतका अुद्धार करें। हमारी आश्रम-माता भी हम सोते रह कर आलसी और निर्बल जीवन व्यतीत करें तो खुश नहीं होतीं। अुनकी यही अभिलाषा है कि हम जल्दी जागनेवाले, तपोमय जीवन बितानेवाले और माताके पीछे सदा तत्पर रहनेवाले सेवक बनें।

आश्रम-माताकी यह प्रभाती मैंने आज सबको सुनाओ है। प्रभाती आपको पसन्द आ गयी होगी तो सवेरा होते ही सुखद बिछौना छोड़कर जाग जानेकी सावधानी जरूर रखेंगे। और प्रभातीकी तरह आश्रम-माताको लोरी गानेकी जरूरत नहीं पड़ेगी!

प्रवचन १४

परम अुपकारी घंटी

लोग देवी-देवताओंके स्तोत्र गाते हैं। आज हम घंटीका स्तोत्र गायेंगे। वह देवता नहीं, परन्तु हमारा परम अुपकारी मित्र है। वह हमेशा हरअेक काममें हमसे पांच मिनट पहले तैयार हो जाती है। हमारे सामने पांच कदम चलकर हमें हसती हुआ अपने पीछे बुलाती है। वह हमारी दिनभरकी साथिन है। ब्राह्म-मुहूर्तमें हमें जगाती है तबसे वह हमारे साथ रहती है और कामकाजमें, अुद्योगमें, विद्याभ्यासमें, खेलकूदमें, भोजनमें, प्रार्थनाओंमें — सभी कार्यक्रमोंमें हमारे साथ रहकर अन्तमें हमें मीठी नींदकी गोदमें सौंपनेके बाद ही शांति लेती है।

अिस घंटी जैसी अचूक और विश्वासपात्र साथिन हमें और कौन मिलेगी? सूर्य जितने अचूक ढंगसे अुदय और अस्तके समयका पालन करता है, अुतनी ही अचूक बनकर हमारी घंटी हमारे प्रत्येक समयका पालन करती है। अिस मामलेमें वह सूर्यकी बोलती हुआ बच्ची ही है। सूर्य तो हमें बड़े बड़े समय ही बताता है — सूर्योदय, ...ल, मध्याह्न आदि समय ही बताता है। परन्तु यह अुसकी बच्ची तो हमें ... अलग अलग समय-खंड भी सूचित कर सकती है। और हमारी सूर्यकी बच्ची तो ...ल्ती भी है। तेज झंकारसे वह गूंज अुठती है। और जब हम अपने कामोंमें तल्लीन ...ते हैं तब टनननकी आवाज करके हमें जगा देती है और आगेके कार्यक्रमकी याद

दिलाती है। वह पूरी तरह विश्वासपात्र है। सारी चिन्ता अुसे सौंपकर हम निश्चिन्त हो जाते हैं और अपने हाथका काम करते रहते हैं; हमारे मनमें पक्का विश्वास रहता है कि दूसरे कामका समय होगा तब हमारी विश्वासपात्र घंटी हमें जरूर सचेत कर देगी। अुसके भरोसे रहकर हम अपना अन्तिम क्षण भी काममें लगा सकते हैं।

यह घंटीका स्तोत्र है, परन्तु वास्तवमें वह हमारे आश्रमके समय-पालनके आग्रहका, समय-पालनके व्रतका ही स्तोत्र है। अपने यहां हम चौबीसों घंटेका समय-पत्रक बनाते हैं और व्रत जैसी धार्मिकतासे अुसके अनुसार चलते हैं।

घंटी बजानेकी जिम्मेदारी जिसके हिस्सेमें होती है, वह आश्रमका यह व्रत जानता है। वह अपनी जिम्मेदारीके भानसे सदा जाग्रत रहता है और जो समय जिस कामके लिअे होता है अुस समय घंटी अचूक रूपमें बजाता ही है। घंटी अपना समय चूके अथवा अेक मिनट भी देरसे बजे, अैसा हमारे यहां क्वचित् ही होता है। नये मित्रोंके हिस्सेमें भी यह जिम्मेदारीका काम कभी न कभी आयेगा। बेशक, यह बड़ी चिन्ताका काम है। परन्तु हमारा यह समय-पालनका आग्रह आपकी रग-रगमें अुतर जायगा, तो फिर आपको चिन्ताका भार नहीं लगेगा। अपने मनमें यह विचार जाग्रत रखिये कि यदि मैं घंटीका समय चूकूंगा तो सारे आश्रमवासियोंको असुविधा होगी, और सब कामोंमें गड़बड़ी पैदा होगी। बस, फिर घंटीका समय चूकना आपके लिअे असंभव हो जायगा, और अपना फर्ज अचूक ढंगसे पूरा करनेमें आपका अुत्साह बढ़ेगा। परन्तु यदि आश्रमका आग्रह आपकी रगोंमें नहीं अुतरेगा और आप अिस तरह बिलकुल हलके मनसे काम करेंगे कि 'दो मिनट देर-सबेर भी हो गअी तो क्या बिगड़ जायगा? यहां क्या किसीकी गाड़ी चूकनेवाली है?' तो अेक भी समयका निश्चित रूपसे पालन करना आपके लिअे असंभव हो जायगा। और अिस कड़े कर्तव्यकी चिन्ताका भार आपको अितना लगेगा कि अेक सप्ताहमें तो आप सूख जायेंगे!

अिस संबंधमें आपको अेक अन्य दिशाकी चेतावनी देनेकी जरूरत है। यह संभव है कि अति अुत्साही मित्र समय न चूकनेकी अुत्सुकतामें अेक दो मिनट जल्दी घंटी बजा दें। घड़ीकी सुअी दो मिनट पीछे होगी तो यह अुनकी आंखको दिखाअी ही नहीं देगा, अथवा अति अुत्साहमें वे अपने मनमें गलत अन्दाज लगा लेंगे कि घड़ीके पाससे घंटी तक पहुंचूंगा अितनेमें दो मिनट हो ही जायंगे। परन्तु दो मिनट तो अेक फर्लांगका अन्तर काटने जितना समय है, जब कि घड़ी और घंटेके बीच तो पूरे ५ सेकंडका भी अन्तर नहीं है। अिस प्रकार घंटी जल्दी बज जाय — भले वह बहुत ही थोड़ी, मिनट आधी मिनट ही जल्दी हो — तो भी अुसमें हमारे व्रतका भंग होगा। क्योंकि हमारे हाथके चालू काम अुनका अेक मिनट भी छीन लिया जाय तो अुसके विरुद्ध आवाज अुठाये बिना नहीं रहेंगे। हम सब ग्रामसेवक बनना चाहते हैं और गांवोंकी जनताके लिअे प्रेम रखते हैं। परन्तु वे जिस तरह गाड़ीके समयसे घंटे दो घंटे पहले स्टेशन पर जाकर बैठते हैं वैसा करनेको हम तैयार नहीं हैं! हमें प्रत्येक कामको अुसका निश्चित समय पूरी तरह देना है; न किसीका अेक मिनट

छीनना है और न किसीको अेक मिनट अधिक देना है। आश्रममें हम प्रत्येक का निश्चित समय पर ही शुरू करनेका आग्रह क्यों रखते हैं, यह अब आप समझ ग होंगे। हमारी प्रार्थनाअें बिलकुल निश्चित समय पर ही शुरू होंगी। गाड़ी जल्दी य देरसे रवाना नही होगी, अिसका हम सबको भरोसा होता है। अिसलिअे हम म जल्दी आकर नहीं बैठते और न आनेमें देर ही करते हैं। हम समयकी रक्षा करते हैं और समय हमारी रक्षा करता है।

आश्रमकी घंटी तो अपने समय पर अचूक रूपमें बजती है। परन्तु क्या हम आश्रम-वासी अुन टकोरोंसे सूचित होनेवाली प्रवृत्तियोंमें अचूक रूपसे लग जाते हैं? वास्तविक महत्त्वकी बात यही है। घंटीका महत्त्व अिसीमें है कि हम अुसका आदर करें। वह बजती रहे और हम समय पर अुस कार्यमें अुपस्थित न हों तो वह किस कामकी? बाहरसे सुननेवालेके मनमें अिससे आश्रमकी अिज्जत जरूर बढ़ेगी। 'वाह, आश्रमकी घटी कैसी अचूक बजती है!' अिस तरह वे हमारी तारीफ करेंगे। अुसकी आवाज पर आधार रखकर गावके किसान जागेंगे और खेतोंसे लौटेंगे, ग्वाला गायोंके झुण्डको हाकेगा और वापिस लायेगा। परन्तु हम तो जहांके वहीं रहेंगे। घंटी प्रार्थनाका समय वफादारीसे बतायेगी, परन्तु प्रार्थनाका चौक तो खाली ही रहेगा। कुछ लोग श्लोक-पाठके बीचमें आयेंगे, कुछ भजनके बीचमें और कोअी कोअी तो ठेठ धुनके समय आयेंगे। भोजनका समय घंटी तो बराबर बतायेगी, परन्तु हमारी छातीके भीतरकी घंटी अुसे सुनकर बज न अुठे और प्रत्येक व्यक्ति अपनी अिच्छाके अनुसार दो, चार या दस मिनट जल्दी या देरसे भोजनशालामे पहुंचे, तो सबका समय खराब होगा, भोजनशाला अव्यवस्थित होगी और अुसके कार्यकर्ताओंको बड़ी परेशानी होगी।

समयके पालनका आश्रममें हम अितना आग्रह क्यों रखते हैं? समय हमारा मूल्यवान धन है। धनिक बापका मूर्ख बेटा जैसे व्यसन, दुराचार और कुसंगतिमें अपना धन अुड़ा देता है, वैसे हम अपना समय-धन अुडाना नही चाहते। बुद्धिमान धनिककी तरह हमें अपने समय-धनका सदुपयोग करना है। अुसका हिसाब रखना है। सच्चा धनिक पाअीको भी तुच्छ समझकर व्यर्थ कभी नहीं खरचेगा। पाअी भले छोटी हो, परन्तु पाअी पाअी जमा होकर ही तो रुपया बनता है न? पाअीकी लापरवाही करनेवाला आगे चलकर रुपयेकी तरफ भी लापरवाह बन जाता है। हमारा अमूल्य आयुधन भी क्षण क्षणका बना हुआ है। हम क्षणोंकी रक्षा करेंगे तो हमारे घंटों और दिनोंकी रक्षा हो जायगी। क्षणोंको तुच्छ मानकर बिगाड़ेंगे, तो हमें अुड़ाअूपन और लापरवाहीकी बुरी आदत पड़ जायगी और अन्तमें हमारे महीने और वर्ष मिट्टीमें मिल जायेंगे। यह विचार हम अपने खूनमें अुतार लेना चाहते हैं। अिसीलिअे हमने अपनी घंटीका चौबीस घंटेका क्रम व्यवस्थित कर दिया है।

मैं जानता हूं कि हमारे समाजमें समय-पालनका आग्रह बहुत ही मन्द है। निकम्मी बेकार भटकनेमें घंटों बिता देने पर भी लोगोंको अैसा नहीं लगता कि कोअी हो गअी। सुबहसे शाम तक क्या क्या करना है, अिसका समय-पत्रक

वे नहीं बनाते। जैसे कागजका टुकड़ा हवामें चाहे जहां अुड़ता रहता है, वैसे ही वे जो प्रवृत्ति जहां खींच ले जाय वहीं खिंचते रहते हैं।

आप भी यहां समय समय पर बजनेवाले घण्टीके टकोरोंसे थोड़े दिन तो शायद बहुत परेशान रहेंगे। आपको समय-पालनका विचार पसंद आ गया हो, तो भी आपके शरीरको अुसे बरदाश्त करना भारी जान पड़ेगा। आपको भूख लगी होगी तो भी घण्टी सुनकर दौड़े दौड़े भोजनालयमें पहुंच जाना चाहिये, यह कल्पना ही आपको दस मनके बोझकी तरह लगेगी। क्षणभर तो आपको यह खयाल होगा कि अिससे भूखे रहना अच्छा है! परन्तु जैसे-जैसे आश्रमका समय-पालनका आग्रह आपके खूनमें मिलता जायगा, अुसमें आपको आनन्द आता जायगा, वैसे-वैसे यह स्थिति बदलती जायगी। घण्टीकी आवाज सुनकर हम पर अैसा अुलटा असर नहीं होता। हमारी भूख तो अिस आवाजसे ही जाग्रत होती है, मुंहमें पानी आने लगता है और पैर आनन्दसे भोजनालयकी तरफ दौड़ने लगते हैं। आपको भी थोड़े दिनोंमें अैसा ही अनुभव होने लगेगा। आपको भी यह असह्य लगेगा कि आपका अेक क्षण भी बेकार जाय; अितना ही नहीं, आपकी ढिलाअीसे यदि आपके साथियोंको परेशान होना पड़े तो आपको बड़ी शर्म मालूम होने लगेगी। आपको भी समय-पत्रक बनाये बिना कोअी दिन बिताना असह्य लगेगा। आपको भी गपशपमें कीमती समय बरबाद करना असह्य मालूम होगा।

प्रवचन १५

समय-पत्रक

कल मैंने आपके सामने हमारी अुपकारी घण्टीका स्तोत्र गाकर सुनाया था। अुस परसे आपने अितना सार समझ लिया होगा कि प्रत्येक संस्था और प्रत्येक व्यक्तिको अपने लिअे आवश्यकतानुसार समय-पत्रक बनाना चाहिये।

समय-पत्रक बनाना अेक कला है। यदि वह बनाना आता हो तो हमें पता भी नहीं चलेगा कि हमारा दिन आनन्द-अुद्योगमें कब बीत गया। परन्तु अिसकी कला न आती हो तो वह हमारे दिनको अितना बोझिल बना देगा मानो हमारे सिर पर दस मनका पत्थर रखा हो।

हमारे यहांका समय-पत्रक आप देखेंगे तो पता चलेगा कि अुसमें हमारी सब जरूरतोंको सम्मानपूर्वक स्थान दिया गया है। आप देखते हैं कि जैसे अुसमें अुद्योग और विद्याभ्यासको जगह दी गअी है, वैसे ही नहाने, धोने, खाने वगैराको भी पर्याप्त स्थान दिया गया है। लोगोंकी कल्पना होती है कि आश्रममें खेलकूद और आनंद-कल्लोल नहीं होगा, मगर हमारी तो वह खुराक है। अुसका समय तय करनेमें हमने जरा भी कंजूसी नहीं की है। प्रार्थनाओं और भजनोंको आम लोग अपने जीवनमें स्थान नहीं देते। परन्तु अुनके लिअे अुदारतासे समय रखकर हम हृदयकी गहरी शान्ति प्राप्त करते हैं। हमारी अेक भी भूख अतृप्त रह जाय, अैसी कोअी कमी हमने अपने समय-पत्रकमें रहने नहीं दी है।

हां, अितना सही है कि अुसमें आलस्यके लिअे अथवा बेकार गंवा देनेके लिअे हमने कोअी समय नहीं रखा है। लेकिन अिसका मतलब यह नहीं कि सोनेके लिअे समय नहीं रखा है, या सोनेसे पहले दो घड़ी बातचीतके लिअे समय नहीं रखा है, या भोजनके बाद दो घड़ी आरामका समय नहीं रखा है। ठीक समय पर और काफी मात्रामें यह सब तजवीज हमारे पत्रकमें है ही। परन्तु अव्यवस्थित जीवनकी आदतवालोंको अिससे संतोष कैसे हो? अुन्हें खेलकूद, बातचीत और नींद नहीं चाहिये, अुन्हें तो चाहिये अव्यवस्था। अुन्हें कामके समय सोनेका और सोनेके समय बातें करनेका मन होता है। अुन्हें खेलके समय खानेकी और खानेके समय कुछ न कुछ काम निकालनेकी सूझती है। अैसे लोगोंको हमारा समय-पत्रक संतोष दे ही नहीं सकता। जीवनमें से अैसी अव्यवस्था दूर कर देना ही तो हमारे व्रतोंका मुख्य हेतु है।

परन्तु कोअी यह न समझे कि अव्यवस्थित जीवनवाले सुख अनुभव करते हैं। वे हमेशा असन्तोष और बेचैनी ही भोगते हैं। वे हमेशा हाथ-पैर मारते रहते हैं और यही देखते रहते हैं कि क्या करनेसे आनन्द आयेगा? खायें तो मजा आयेगा? खेलने जायें तो मजा आयेगा? गादी पर पैर पसार कर लेटनेसे मजा आयेगा? कोअी चटपटा अुपन्यास पढ़ें तो आनन्द आयेगा? अिस प्रकार वे अन्धेकी तरह अेक आनन्दसे दूसरे आनन्द पर कूदते रहते हैं, और ज्यों ज्यों कूदते हैं त्यों त्यों आनन्द अुनसे दूर भागता है। क्योंकि जो आनन्द वे भोगना चाहते हैं अुस पर थोड़ी देर ठहरना तो चाहिये न? अुसके लिअे कुछ तो श्रम करना ही चाहिये न? अुन्होंने यह गुण अपने भीतर बढ़ाया नहीं, अिसलिअे अुन्हें हरअेक आनन्द जरासी देरमें नीरस लगने लगता है और वे नअे आनन्दके पीछे दौड़ते हैं। अव्यवस्थित और बिना समय-पत्रकवाले लोग सदा ही बेचैन, अस्वस्थ, असन्तुष्ट और दुःखी रहते हैं। हमारे समाजमें ज्यादातर अैसा ही जीवन बिताया जाता है, अिसलिअे हम सबको अिसका सामूहिक अनुभव है। आप अपने दिन याद करके देखिये। जिस हद तक आपने व्यवस्थित जीवन बिताया होगा, अुसी हद तक आपने आनन्द और सन्तोष भोगा होगा। जिस हद तक आपने अूपर वर्णन किया हुआ अव्यवस्थित जीवन बिताया होगा, अुस हद तक आपको असन्तोष ही लगा होगा। जैसे-जैसे समय-पालनका अभ्यास बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे आपको जीवनका सच्चा सुख अनुभव होने लगेगा।

यह तो अव्यवस्थित और आलसी लोगोंकी बात हुअी। अब दूसरे धुनवाले लोगोंके जीवन देखें। अुनकी गिनती आलसियोंमें नहीं हो सकती। जब अुन पर किसी बातकी धुन सवार होती है, तब वे रात-दिन कुछ नहीं देखते। अुन्हें खानेकी भी सुध नहीं रहती। जो काम हाथमें लिया अुसमें वे पागल होकर जुट जाते हैं, और पूरा कर लें तभी छोड़ते हैं। कभी अुन्हें कातनेकी धुन लगती है। चरखा-संघकी फीस चढ़ गअी हो या घरमें कपड़े फट गये हों, तो अुन्हें सनक सवार होती है और वे कातने लगते हैं। घंटों कातते रहते हैं। फिर वे थकावटकी परवाह नहीं करते। दूसरे काम पड़े रहें तो अुसकी भी परवाह नहीं करते। और कभी कभी तो

साथ रहनेवाले दूसरे लोगोंको काफी परेशान भी कर डालते हैं — जैसे जोशमें दौड़नेवाले लोग अपनी लपेटमें छोटे बच्चोंको गिरा देते हैं! वे सूतका ढेर जरूर लगा देंगे। अुन्हें अेक निष्ठासे अुद्योग करते देखकर किसीके मनमें आदर अुत्पन्न हुअे बिना नहीं रहता। परन्तु धुन अुतर *गअी कि सारा खेल खतम!* फिर चरखा कहां पड़ा है, अुसके तकुवे, माल और अटेरन कहां पड़े हैं, अिसका अुन्हें पता नहीं रहेगा। अिसी तरह पढ़नेकी धुन सवार होगी तब वे पढ़ते ही रहेंगे। परन्तु धुन अुतरने पर बिचारी पुस्तकोंका अीश्वर ही मालिक है! भक्तिकी धुन सवार होगी तो दिनरात भजन गाया करेंगे, प्रार्थना करते रहेंगे और ध्यान लगायेंगे। परन्तु धुनके अुतरने पर अिस तरह व्यवहार करेंगे मानो नास्तिक हों। अुस समय हमारी प्रार्थनाकी घण्टी सुनकर वे जागेंगे नहीं, कदाचित् अुसकी हंसी अुड़ायेंगे और रजाअी अधिक तान लेंगे। अुपवासकी धुन लगेगी तो शरीर अत्यन्त कमजोर हो जाने तक अुसे खींचेंगे। परन्तु धुन अुतरते ही जीभकी लगाम खुली छोड़ देंगे।

अिसमें शक नहीं कि मनुष्यके आदर्श अूंचे हों, देशभक्ति जैसे अुन्नत विचार पर अुसके जीवनकी रचना हुअी हो, तो अैसा धुनवाला आदमी दुनियामें बड़े बड़े पराक्रम कर जाता है। परन्तु अैसी अूंची धुन सवार होना तो भाग्यवान मनुष्यके जीवनमें ही सम्भव है। अैसा भाग्य किसी दिन हमें अपनी कृपासे कृतार्थ करेगा, यह आशा रखकर कैसे बैठा रहा जा सकता है? हम धुन पर नजर रखकर बैठे रहना नहीं चाहते। हम तो जिन गुणोंको अेक सेवकके जीवनमें जरूरी मानते हैं अुन्हें शिक्षा लेकर अपने भीतर पैदा करना चाहते हैं और अिसीलिअे यहां आश्रममें अिकट्ठे हुअे हैं। हम समय-पत्रक बनाकर अेक अेक क्षणका हिसाब रखकर ही वे गुण अपनेमें पैदा कर सकते हैं। अथवा धुन लगानी हो तो भी हम तो समय-पालनकी ही धुन लगायेंगे। बेशक, यह भी अेक बड़ी धुन है। रामचन्द्रजीको 'प्राण जाय पर वचन न जाही' अैसी वचन-पालनकी धुन थी। *वैसी ही हमारी समय-पालनकी धुन है। ४ बजे जागना है तो जागना* ही है। अिसमें क्षण भरका भी फर्क नहीं पड़ सकता। ४-१५ बजे प्रार्थना शुरू करनी है तो ४ बजकर सोलहवीं मिनट न होने दी जाय। कातने या अुद्योगके जितने घण्टे निश्चित किये हों अुतने पूरे अुन्हें देने ही हैं। दो-चार मिनट अिधर चले गये तो क्या और अुधर चले जायें तो क्या, यों सोचें तो हमारी साख चली जाय। अुपरोक्त अनियमित धुनोंसे यह धुन श्रेष्ठ है। हमारे जैसे सेवकोंके लिअे तो बड़ी कल्याणकारी है। अिससे साधारण मनुष्य भी अुत्तम सेवककी पदवी पर पहुंच सकता है। रोज नियमित रूपसे थोड़े थोड़े मिनट हम किसी विषयके अभ्यासको दें, तो लम्बे अरसेमें अुस विषयके निष्णात हो सकते हैं। कुछ समय नियमित लिखनेवाले लेखकोंने अन्तमें बड़ी बड़ी पुस्तकें लिख डाली हैं। तमाम अनुभव किये बिना अपनी सामान्य शक्तिके द्वारा अिस आदतसे हम बड़े बड़े काम कर सकते हैं।

समय-पत्रक पर अितना भार देनेके बाद अब अेक चेतावनी भी सुन लीजिये। याद रखिये कि आश्रममें कोअी बीमार है और अुसके सिर पर मिट्टीकी पट्टी रखनेके

करेंगे, कोअी खादी-कार्यमें लगेंगे और कोअी अिससे मिलता-जुलता आश्रम खोलेंगे। अुस समय यहाका तैयार समय-पत्रक आपको रास्ता दिखाने नही आयेगा। यहाके टकोरे आपको बार-बार सचेत नहीं करेंगे। परन्तु समय-पालनका रस आपके खूनमें मिल गया होगा, अव्यवस्थित जीवन कभी भी सहन न करनेका आपका स्वभाव बन गया होगा, तो फिर सब शुभ ही शुभ है। आप स्वयं तो समय-धनका सदुपयोग करेंगे ही, परन्तु जहा आप होंगे वहा आश्रम बनकर दूसरोंको भी अुसका रंग लगायेंगे।

आप आश्रममें न हों, अकेले हो, आसपासका वातावरण प्रतिकूल हो, अैसे समय आपको अपने व्रतमें टिकाये रखनेवाला अेक विचार मैं आपको दू? आप सदा यह विचार मनमें रखें कि "मैं देशका सेवक हूं। मेरा सारा समय देशकी संपत्ति है। अेक क्षण भी मेरी अपनी मालिकीका नही है। अपना जीवन अव्यवस्थित रखकर मैं देशके समय-धनका चोर नहीं बनूगा। मुझे सौंपे हुअे अेक-अेक क्षणका हिसाब मैं अपने देशको दूंगा और अपनी पूरी शक्तिसे अुसका अुपयोग करके अुसके आशीर्वाद लूंगा।" हृदयमें यह भावना आप जाग्रत रखें तब तो चिन्ताकी कोअी बात नहीं है। तब समय-पत्रक अपने-आप बन जायगा। कागज पर नहीं तो आचरणमें अवश्य ही बन जायगा।

प्रवचन १६

डायरी

कल हमने समय-पत्रककी बात की। अुसी तरह आज डायरीकी बात करेंगे। दोनों अेक-दूसरेके पूरक ही हैं। समय-पत्रक यदि अिस बातका पहलेसे तैयार किया हुआ अनुमान-पत्र है कि हम अपना समय-धन किस तरह खर्च करना चाहते हैं, तो डायरी अुस धनको हमने सचमुच कैसे खर्च किया अिसका रोज शामको सोते वक्त लिखा हुआ ब्योरेवार हिसाब है। चरवाहे जब बकरियोंका बड़ा झुंड लेकर चराने निकलते हैं तब अेक आदमी आगे चलता है और दूसरा अेक आदमी पीछे चलता है। अिस प्रकार दो रक्षकोंके बीचमें वे अपना सारा झुंड रखते हैं और अेक भी बकरी नहीं गंवाते। हम भी ८६,४०० सेकंडोंका जबरदस्त झुंड लेकर रोज चराने निकलते हैं। अुसके आगे समय-पत्रक रूपी रक्षकको रखते हैं और पीछे डायरी-रूपी रक्षकको। जो अैसा नहीं करते, न दिनभरकी दिनचर्याकी पहलेसे योजना सोचते हैं, और न बीते हुअे दिनका रातको हिसाब रखते हैं, वे सेकंड तो ठीक घंटे भी यों ही खो देते हैं। वे मुश्किलसे ही गिना सकते हैं कि २४ में से ४ घंटे भी अुनके अपने थे।

अिस प्रकार समयको व्यर्थ बिगाड़ना किसीको भी पुसा नहीं सकता। हम सेवकोंको तो बिलकुल ही नहीं। सेवक होनेके कारण हम तो अपनी सारी शक्ति और सारा समय भारतमाताके चरणोंमें अर्पण कर चुके हैं। हमने अपना निजी अेक क्षण भी नहीं रखा है। जितने दिन, घंटे और पल हमारे पास है, वे सब हमारी स्वामिनी भारतमाताके द्वारा हमारे हाथोंमें सौंपी हुअी पूंजी हैं। अुसने हम पर विश्वास रखकर अुसके

हितके लिअे व्यापारमें लगानेको वह पूंजी हमें सौंपी है। अिसमें तो हमारी जिम्मेदारी अनेक गुनी बढ़ गअी है। हमें सौंपे गये धनसे हम कैसा व्यापार करना चाहते हैं, अिसका अनुमान-पत्र हम मातासे पहले मंजूर न करायें और व्यापार करनेके बाद अुसका हिसाब अुसके सामने पेश न करें, तो हम कितने अविश्वस्त और नमकहराम सेवक कहलायेंगे? और अुस माताके समय-धनको हम अपने ही अैश-आराम और आलस्यमें खर्च कर दें, तब तो हम अुसके चोर ही ठहरेंगे न?

हिसाब रखनेकी आदत अेक अच्छी आदत है। अिससे जीवनमें बारीकी आती है। जीवनमें यह आग्रह बनता है कि पाअी या पल भी तुच्छ नहीं है, फेंक देने लायक नहीं है, अुसे हिसाबमें गिनना ही चाहिये। संभव है सेवकके नाते जीवन बितानेमें हमारे हिस्से अनेक जिम्मेदारीके काम आयें। सार्वजनिक धनकी रक्षा करनेका काम आ सकता है, खादी-कार्य आदि करते हों तो अुसका हिसाब रखनेका काम आ सकता है, मजदूरों और विद्यार्थियोंकी संस्थायें चलाते हों तब हम पर यह देखनेकी जिम्मेदारी आ सकती है कि समयका अच्छेसे अच्छा अुपयोग कैसे हो? अगर आजसे हम अपना अैसा स्वभाव न बना लें कि पाअी पाअीका हिसाब मिलाये बिना हमें चैन ही पड़े, तो हम विश्वासपात्र कार्यकर्ता कैसे बन सकेंगे?

'अिसमें क्या हो गया? हम कहां खा गये हैं? थोड़े पाअी, पैसे या आने हिसाबमें घट-बढ़ गये तो अुसकी व्यर्थ चिन्ता क्यों की जाय?' — अैसे लापरवाहीके विचार जो कार्यकर्ता करे, वह कितना ही भला आदमी हो तो भी भयंकर है। वह सार्वजनिक धनका अुपयोग करने लायक नहीं है। अिसी प्रकार बहुतोंका समय जिसके हाथमें है वह यदि सबके छोटेसे छोटे पलका मूल्य न समझे और किसीका अेक पल भी नष्ट न हो अिस प्रकार कार्यक्रम सोचनेकी सावधानी न रखे, तो वह दूसरोंके लिअे बहुत ही असुविधाजनक और अप्रिय हुअे बिना नहीं रहेगा। मान लीजिये कि अुन पर कताअी-वर्ग चलानेका काम आ गया है। यदि अुसकी दृष्टिमें समयका मूल्य न हो, तो वह सावधानी रखकर वर्गके लिअे सारे साधन पहलेसे विचारपूर्वक तैयार नहीं रखेगा। वर्गका समय हो जानेके बाद अेकसे कहेगा तेल ले आओ, दूसरेसे कहेगा चाकू ले आओ, तीसरेसे कहेगा तराजू ले आओ और फिर खुद रजिस्टर ढूंढ़ने दौड़ेगा। अुसने यदि अेक-अेक पलको कीमती समझा होता, तो अपने और दूसरे बहुतोंके अनेक पल बिगड़ते देखकर अुसकी छातीमें घाव जैसा लगता। परन्तु जिसका स्वभाव अूपर बताये अनुसार हो, 'अिसमें क्या हो गया?' यही जिसके जीवनका सूत्र बन गया हो, अुसका कताअी-वर्ग अथवा और कोअी भी काम प्राणवान कैसे बनेगा? वह विद्यार्थियोंका आदर कैसे प्राप्त कर सकेगा? अैसी लापरवाही हममें घर न करे, हममें अपने और अपने साथियोंके समयका अेक अेक क्षण काममें लगानेकी लगन पैदा हो, अिसके लिअे डायरी लिखनेकी आदत डालना बहुत ही अुपयोगी है।

और डायरीमें केवल समय ही दर्ज नहीं करना है। अुसमें अिससे बहुत अधिक बातें आती हैं। जब हम दिनकी दौड़धूपमें होते हैं तब संभव है हम पूरे जाग्रत न भी रह

पायें। हो सकता है कभी आलस्यमें फंसकर अथवा ऐश-आराममें हमने अपना समय गंवाया हो, कभी कामचोर बनकर हम अपने कर्तव्यसे चूके हों और साथियोंका बोझा हमने बढ़ा दिया हो, कभी मित्रोंके सहायक बननेकी स्थितिमें होने हुअे भी कर्तव्यसे बच निकले हों, या कभी अपने अनुचित वचनसे या कृत्यसे हमने दूसरोंका जी दुखाया हो। कामकी धांधलीमें और प्रसंगकी अुत्तेजनामें अैसी कितनी ही बातें हम कर बैठते हैं। अुस समय हमें अिस बातका भान नहीं रहता कि हमने कुछ बुरा किया है। हमारी बुद्धि दिनभर जाग्रत नहीं रहती, अिसलिअे वह हमें हर वक्त सावधान करके रोकती नहीं। यों करते करते हमें अिस तरहका व्यवहार करनेकी आदत ही पड जाती है। जैसे लापरवाह किसानकी खेतीमें निकम्मी घास वगैरा बढती रहती है, वैसे हमारे जीवनमें कुटेव और बुरा बरताव बढ़ता रहता है और हम सेवककी योग्यतासे दिन-दिन गिरते जाते हैं!

अिस प्रकार गिरनेसे हमें कौन रोक सकता है? कोअी श्रद्धेय व्यक्ति हमारे सौभाग्यसे आसपास हो और हमारे प्रति प्रेमसे प्रेरित होकर अिस ओर हमारा ध्यान खींचे, तो जरूर बच जाना संभव है। परन्तु जिसका स्वभाव बुरा बन जाता है, अुसकी बुद्धि बहुत ही वक्र हो जाती है। क्या हमें अैसे व्यक्तियोंकी सलाह लेने जानेकी सन्मति सूझेगी? कभी नहीं, अुलटे हमारा मन सदा अुनसे बचनेका ही प्रयत्न करता रहेगा। कोअी मित्र टोकने लगे तो बहुत संभव है अुसके साथ हम लड़ ही पड़ेंगे!

क्या आपको अैसा लगता है कि यह मैं किन्हीं महापापी दुष्ट मनुष्योंका वर्णन कर रहा हूं? नहीं नहीं; यह हमारा अपना ही वर्णन है। कम-अधिक मात्रामें हम सबका व्यवहार अैसा ही होता है। हममें से कौन कह सकता है कि वह चौबीसों घंटे जाग्रत रहकर अपने-आप पर चौकीदारी करता है? हम स्वयं अपने पर पहरा रख नहीं सकते और दूसरा टोके तो हमें बर्दाश्त नहीं होता, अैसी दयाजनक स्थिति हमारी होती है।

हम चाहें तो डायरीको अपना पहरेदार बना सकते हैं। रातको बिस्तर पर बैठकर गंभीरतासे दिनभरकी दिनचर्याका सिंहावलोकन करें, अुस समय हमारे मस्तिष्कका शान्त होना संभव है। अुस समय अुत्तेजनाका कोअी कारण नहीं होता। हमने क्या अुचित किया, क्या अनुचित किया, कौनसा समय बिगाड़ा, कौनसा सुधारा, कहां चढ़े, कहां गिरे — अिसका हिसाब शांत चित्तसे करनेके लिअे वह बहुत अनुकूल समय है।

और अुस समय हमें किसी परायेको तो हिसाब देना नहीं होता। दूसरे लोग पास हों तो हमें शर्म आये और मनकी चोरी करनेका मन हो, सत्य पर परदा डालनेका लोभ हो; परन्तु हम तो अपने आपको ही हिसाब देनेके लिअे बैठते हैं। शर्म तो मालूम होगी, परन्तु वह शर्म हमें सत्यचोर बनानेके बजाय जाग्रत रखनेमें सहायक हो जायगी।

डायरीसे सबसे बड़ा काम कोअी हो सकता है तो यह यही है। अिस दृष्टिसे लिखी जानेवाली डायरी कोअी मामूली नोटबुक नहीं, परन्तु हमारे आध्यात्मिक मित्र जैसी होगी। अलबत्ता, यह तभी होगा जब हम डायरीके साथ अीमानदारीसे सब बातचीत करते होंगे। अुसके साथ भी सत्यकी चोरीका बरताव करेंगे तो डायरीका हेतु मारा जायगा, अितना ही नहीं, वह हमारे गहरे पतनका अेक नया साधन बन जायगी। अुसे लिखते समय यदि हमारे मनमें पाप होगा, हम अपनी तारीफ ही अुसमें लिखते रहेंगे, औरोंकी निन्दा और अपने बुरे कामोंके बचावसे ही अुसके पन्ने भरते रहेंगे, तो वह हमारा हितकारी चौकीदार नहीं रहेगी, परन्तु हमें बुरे व्यसनोंमें फंसानेवाले मित्रका काम करेगी। सेवामय जीवनकी अभिलाषा रखनेवाले हम लोग डायरीको अिस तरह क्यों धोखा दें? भगवान हमें अितना नीचे गिरनेसे बचाये।

प्रवचन १७

डायरी लिखनेकी कला

कल मैं अिस विषय पर बोला था कि हमें डायरी लिखनेकी सुन्दर आदत डालनेकी क्यों जरूरत है। आपमें से बहुतोंके जीमें आया होगा कि डायरी लिखनेका नियम बनाया जाय। कोअी तो यह सोचकर कि शुभ कार्य शीघ्र ही किया जाय लिखने भी बैठे होंगे।

जो अिस तरह लिखने बैठेंगे अुन्हें कैसा अनुभव होगा? अुनका हाथ जल्दी जल्दी नही चलेगा, अुनके मनमे प्रश्न होगा — 'क्या लिखें और क्या न लिखें?' सचमुच डायरी लिखना अेक सरस कला है। हमारे देशमें अिस कलाका जितना चाहिये अुतना विकास अभी तक हुआ नही है। हमारे मंडलमें तो अुसका विकास नहीं ही हुआ है। यहां हम डायरीका महत्त्व समझने पर भी अुसका नियम पालन करनेको हद तक नही पहुंचे हैं। अिसलिअे आज आपके सामने अुसके विविध प्रकारके नमूने रखना सभव नही है।

सच्ची परेशानी अिस बातकी होती है कि हम स्वयं अपना पहरा कैसे लगायें या आत्म-निरीक्षण कैसे करें। परेशानी लिखनेकी नही, परन्तु अिस बातकी है कि हमें अपनेको तटस्थ दृष्टिसे देखना कैसे आयेगा। अिसमें अेक ही टेक रखनेकी जरूरत है — हम सच्चे रहें। हम अपने साथ बनावट या दुराव न करें। अिस विचारसे हम अेक अक्षर भी न लिखें कि कोअी पढ़े तो हमारे बारेमें अूंचा खयाल बनाये। मनकी तरंगोंके विषयमें न लिखें, परन्तु जितना करें अुतना ही लिखें।

अुदाहरणके लिअे, मान लीजिये कि आपको बीड़ीका गुप्त व्यसन है। डायरीमें आप अिस व्यसनको खूब गालियां देंगे, अुसे छोड़नेके आप कैसे प्रयत्न कर रहे हैं

अिसके कलामय वर्णनोंमें पन्ने भरेंगे, परन्तु दूसरी तरफ छिपकर बीड़ी पीना जारी ही रखेंगे। अिस प्रकार आपकी हीन वृत्तिको दोहरा सिंचन मिलेगा। आपका व्यसन तो बना ही रहेगा, साथ साथ जो डायरी पढ़ेगा अुसके सामने बड़े प्रयत्नवान होनेकी प्रतिष्ठा भी आपको मिल जायगी! अिसलिअे डायरीमें तो तभी लिखना ठीक होगा, जब आप किसी धन्य क्षणमें बीड़ी कभी न पीनेका व्रत ले लें।

डायरीका दूसरा काम है हमारे रोजके कामकाजकी नोंध, हमारे बिताये हुअे समयका हिसाब। अपने काते हुअे सूतकी, अपने किये हुअे दूसरे अुद्योगों और कामकाजकी काफी ब्योरेवार नोंध हमें रखनी चाहिये। कातनेके बारेमें लिखते समय तारोंकी संख्या तो लिखें ही, परन्तु यह काफी नहीं है। यदि हम सेवक और विद्यार्थी होंगे तो केवल यांत्रिक ढंगसे नहीं कातते होंगे। हमारे दिमागमें प्रतिदिन कुछ न कुछ विचार अुस कामके साथ जरूर जुड़ा रहता होगा। कभी हम गति बढ़ानेकी दृष्टि रखकर कातते होंगे, कभी सूतके कसकी दृष्टिसे कातते होंगे, तो कभी चरखेमें कोअी सुधार करके अुस पर प्रयोग करते होंगे। हमारी डायरी अिस ढंगसे लिखी जानी चाहिये कि अुस समय होनेवाले प्रयोगोंका अुसमें सावधानीपूर्वक अुल्लेख होता रहे। हम खादी-कार्यकर्ता हों तो अपने कामका काफी विस्तृत वर्णन हमें डायरीमें करना चाहिये। हम कहां गये-आये, कितना खर्च हुआ, कताअी वगैराके दाम चुकाये हों तो कितने चुकाये, किनसे मिले, किसे क्या सिखाया — अैसा वर्णन हमारे कार्यालयको हमने बराबर काम किया है या नहीं, हमारे पास काफी काम है या नहीं वगैरा बातोंकी सही कल्पना करा सकेगा।

अिस प्रकार अपने कामका हिसाब रखना किसी किसीको पसन्द नहीं होता। वे सोचते हैं, "क्या हम चोर हैं? क्या हम काम करना नहीं जानते कि हमसे हिसाब मांगा जाता है?" सार्वजनिक सेवकको अैसा स्वभाव नहीं रखना चाहिये। अुलटे अुसे अपना हिसाब दूसरोंको देनेका अुत्साह होना चाहिये। दूसरोंकी आलोचना प्रसन्नता-पूर्वक आमंत्रित करनी चाहिये। हमारी बात सही हो तो धीरजसे सामनेवालेको समझानेका और नया सुझाव मिले तो अुसे कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करनेका अपनेमें रस पैदा करना चाहिये।

अिसके सिवा, यह डायरी खुद हमारे लिअे भी कम अुपयोगी नहीं है। हर महीने, हर तीसरे महीने, हर साल हम अपनी डायरी पर नजर डाल लेंगे, तो हमारा सारा काम चित्रपटकी तरह हमारे सामनेसे गुजर जायगा। अिस परसे हम अपनी खामियां देख सकेंगे और भविष्यकी दिशा भी निश्चित कर सकेंगे।

ये तो डायरीके आवश्यक अंग हुअे। अिन बातोंका अुल्लेख ही डायरीका मूल हेतु है। परन्तु रसिक लेखक अपनी डायरीमें दूसरी भी सुन्दर सुन्दर सामग्रिया भर सकेंगे। कामकाजके सिलसिलेमें नये सज्जनोंका परिचय हुआ हो तो अुनके विषयमें अपनी छापका संक्षिप्त अुल्लेख करेंगे। आसपास कोअी आकर्षक घटना हुअी हो तो अुसके बारेमें भी दो शब्द लिख देंगे। कोअी नया स्थान देखेंगे, किसी वृद्ध आदमीसे

पुराना किस्सा सुनेंगे, कोअी नया लोकगीत या कहावत या शब्द सुनेंगे तो वह लिख लेंगे। कोअी पुस्तक पढ़ेंगे तो अुसका सार या समालोचना लिखेंगे।

जैसा मैंने पहले कहा है, डायरी लिखना अेक कला है। और कला तो जै जैसे अुसका अभ्यास बढ़ेगा वैसे वैसे विकसित होती जायगी। लिखते-लिखते लिखने सुन्दर ढंग हाथ लग जायगा। अूपर जो सुझाव दिये गये हैं अुससे अधिक डायरी ढांचा बना देना अुचित नहीं होगा।

कुछ लोग पहलेसे ही ढांचा बनाकर कुछ खाने बना लेते हैं और रोज अु खानोंको भरते हैं। यह तो नीरस पत्रक हुआ। अुसे डायरी नहीं कहा जा सकता। डायरी तो नित-नयी होनी चाहिये, रोज ताजी होनी चाहिये। खाने तो हम जितने भरेंगे सबके सब अेकसे ही होंगे। परन्तु डायरी सबकी विविध होगी। जैसे हमारे सबके चेहरे अेकसे नहीं होते, अक्षर अेकसे नहीं होते, वैसे हम सबकी डायरियां भी अेक ही ढांचेकी नहीं हो सकतीं। प्रत्येक लेखक अपनी किसी अनोखी ही पद्धतिका विकास करेगा। यह सही है कि हम सब अेक विचार और अेक काम वाले प्राणी हैं, फिर भी हम सबके जीवनमें, हमारे स्वभावमें, हमारी रुचियोंमें बहुत बड़ी विविधता है। अिस विविधताका प्रतिबिम्ब डायरीमें पड़े बिना कैसे रहेगा?

यह सुनकर डायरी लिखनेका सुन्दर नियम जो स्वीकार करें, अुनके लिये अंतिम सुझाव सूत्ररूपमें ये हो सकते हैं :

१. डायरी लिखनेका कोअी समय निश्चित कीजिये। (जैसे कि सोनेसे पहले), और वह समय न चूकनेका आग्रह रखिये।

२. जो कुछ लिखें सत्य ही लिखें। दूसरोंको पढ़वानेकी दृष्टिसे कुछ भी न लिखें।

३. तारीख, समय, कामका ब्योरा आदिके जो आंकड़े लिखें, वे जांच करके सही लिखें।

४. जो लिखें वह बहुत संक्षेपमें लिखें।

प्रवचन १८

समय नष्ट करनेके साधन

समय-धनके बारेमें मैंने आपको दो दिनमें बहुत कुछ कहा है। अपने अेक अेक मिनटका सदुपयोग करने और अुसका हिसाब रखने पर बहुत जोर दिया है। आज मैं जो कहनेवाला हूं वह है तो अुसीके मवधमें, अुसीके गर्भमें आ जाता है, परन्तु हम अुसे सही रूपमें न समझ लें तो हमारे समय-पत्रक और डायरी व्यर्थ साबित होंगे।

समय न गंवाया जाय और अुसका हिसाब लिखा जाय, अितना स्वीकार करनेके बाद भी अुसे गंवाया हुआ कब कहा जाय अिसकी सच्ची समझ होना जरूरी है। जिन प्रवृत्तियों पर आम लोगोंको कोअी आपत्ति नहीं होती, वे सब हमारे समय-पत्रकमें स्थान देने लायक नहीं होतीं। जैसे कि लोग जब काममे फुरसत हो जाती है तब दो घड़ी ताश खेलते हैं। क्या हम अिसे अपने समय-पत्रकमें स्थान देंगे? आपने अपने घरेलू जीवनमें अुसका शौक रखा होगा तो आप पूछेंगे: "क्यों नहीं? लोग अुसमें दाव लगाकर खेलते हैं, वैसा हम न करें; मामूली खेल ही खेलकर दो घडी निर्दोष आनंद लें तो अिसमें क्या बुराअी है? और अिसमें ब्रिज जैसे खेल तो स्मरण-शक्तिको तेज बनानेवाले होते हैं।"

किसीको चौसर और शतरंजका शौक होगा, तो वह समय-पत्रकमें अुसे शामिल करनेकी हिमायत करेगा। अुमके पक्षमें वह बडी जोरदार दलीलें पेश कर सकता है: "ये बादशाही खेल हैं। शतरंजमें अेक सेनापतिके जैसी बुद्धि लगानी पडती है और अुसे खेलनेमें मनुष्य रणक्षेत्रकी कलाका विकास कर सकता है। अुसका दूसरा नाम ही 'बुद्धिबल' है। अुसे नीचे दरजेके लोग ही खेलते हों सो बात नहीं। वह शरीफ घरानोंमें खेली जाती है।" और शतरंजके खिलाड़ियोंमें तो गोखलेजी जैसे आदरणीय नेताओंके अुदाहरण भी दिये जा सकेंगे।

मेरा खयाल है कि हम सेवक लोग आश्रममें हों या बाहर हों, हमारे समय-पत्रकमें अैसे खेलोंके लिअे, वे कितने ही बादशाही गिने जाते हों तो भी, कभी स्थान नहीं हो सकता। स्मरण-शक्ति बढ़ानेके लिअे ताश खेलनेकी अपेक्षा बहुी अच्छी प्रवृत्तियां हमारे पास हैं। और रणक्षेत्रकी तालीमके लिअे शतरंजके बजाय कोअी सच्ची लड़ाअी ही लड़ना हमें आना चाहिये। महापुरुषोंके जीवनसे अैसे खेलोंका अुदाहरण लेनेकी अपेक्षा अन्य बहुतसे मूल्यवान गुणोंके अुदाहरण क्या हम नहीं ले सकते? क्या अिसमें कोअी शक है कि अैसे खेलों पर कितना ही मुलम्मा चढ़ाया जाय तो भी वे अन्तमें तो बेकार लोगोंके ही धंधे हैं? जिनके पास फालतू समय हो और यह सूझता न हो कि अुसे कैसे बिताया जाय, ये युक्तियां समय काटनेके लिअे अुन्हीकी ढूंढ़ी हुअी है। और हमारे लिअे तो दिनके चौबीस घंटे भी कम पड़ते हैं और अिसके लिअे

हम रोज परमेश्वरसे शिकायत करते हैं, तब अैसे खेलोंके लिये घटा दो घटा तो क्या कु मिनट भी फालतू हम कहांसे निकालेंगे?

"परन्तु दिनभरकी थकावटके बाद घरमें दो घड़ी बैठकर हम-तुम दोस्त ता चौपर वगैरा खेल लें तो अुससे थकान अुतर जाती है। दिमागकी अुकताहट मि जाती है," अैसा तर्क खेलोंके रसिया करते हैं। अगर यही देखा जाता है जो लोग दिनभर थकने जैसा बहुत काम नहीं करते, अुन्हींको अैसे खेल सूझते है अिसीलिअे तो खेलोंके शौकीन दो घड़ी फुरसतके समयमें खेल कर संतोष मानते नहीं दे जाते; व्यसनियोंकी तरह जब देखो तब खेलते ही रहते हैं। और थकावट अुतारने लिअे दूसरे आरोग्यकारी साधन हमें न सूझें, अैसी क्या हमारी बुद्धि बिल्कुल मा गअी है? हमने कताअी-बुनाअी या हिसाब-किताब जैसे बैठकके कामोंमें दिन बिता हो, तो हम दौड़ने-कूदनेके खेल खेलें, खेतोंमें या पहाड़ियों पर अथवा नदीके किन सैर करने जायं। दिनमें खेती-बाड़ी जैसे भारी काम किये हों, तो दो घड़ी जैसा आ वैसा गायें-बजायें, कुछ पढ़ें या बातें करते हुअे, चर्चा करते हुअे और आनन्द लेते हु कातें, फूल-पत्तों या रांगोलीकी कुछ शोभा घरमें करें, बालकोंको कहानी सुनावें। दि भरके किये गये अुद्यमकी थकावट अुतारनेका अैसा साधन हम क्यों नहीं ढूढ़ सकते

यह भी कहा जाता है कि "ताश वगैरा खेलोंसे आपसमें अच्छी मित्रता बढ़ है। यद्यपि मैंने तो अच्छे अच्छे मित्रोंको भी अिन खेलोंकी अुत्तेजनामें अेक-दूसरेसे नारा होते और लड़ते ही अधिक देखा है। फिर भी आप समझ सकते हैं कि अूपर बता हुअी प्रवृत्तियोंमें मिलने-जुलने और प्रेमग्रंथि बाधनेका ज्यादा मौका मिलता है।

ये ताश, शतरंज वगैरा खेल निर्दोष जैसे दिखकर हमें धोखा देते हैं और फंसा है। जैसे कोअी चोर हमारे घरमें गरीब जैसा मुंह बना कर घुस जाय वैसा ही ये खे करते हैं। अिसीलिअे तो अिन्हें अधिक भयंकर समझना चाहिये। ताशके शौकीन अे मित्र गंभीर मुंह बनाकर अेक बार कह रहे थे कि "ये निर्दोष खेल तो हम पर बड़ अुपकार करते हैं। अुन्हें खेलनेकी धुनमे जब तक मन लगा रहता है तब तक बु विचार नहीं आते और हम अनेक पापोसे बच जाते हैं। आरामसे अपने घर बैठकर खेलनेमें जीव-जंतुकी हिंसा भी नहीं होती।" अैसी हास्यास्पद बातोंका खंड करनेकी भी जरूरत है? अिससे यही प्रगट होता है कि कुछ लोगोंको ये खेल निर्दोष मुं बनाकर कैसे अपने जालमें फंसाते हैं। मान लें कि अिन खेलोंमें और कोअी दोष नहीं है, तो भी वे हमारे आलसीपनको पोषण देते हैं, हमारे कीमती समयका हरण करते हैं। यह क्या छोटा दोष है? अिस क्षुद्र दिखाअी देनेवाले दोषमें तो बड़ेसे बड़े दोषोंक मूल है। जिसने मौज-मजाको जीवनमें स्थान दिया, अुसे प्रामाणिक धंधा अच्छा ही नहीं लगेगा। वह सच्चाअीका पालन नहीं करेगा, शरीर-श्रमको नीचा समझेगा, अुसे किसीकी सेवा करनेकी फुरसत नहीं मिलेगी और वृत्ति भी नहीं रहेगी। जो काममें चोरी करता है वह लोगोंसे अपनी सेवा करायेगा या लोगोंकी सेवा करेगा?

बेकार लोग समय बरबाद करनेकी और भी कअी युक्तियां निकाल लेते हैं। कोअी प्लाचेट लेकर प्रेतोंको बुलाता है और अुन्हें तरह तरहके सवाल पूछता है, कोअी हस्तरेखा देखकर या ग्रहोंका हिसाब लगाकर भविष्य बताता है। वे तर्क करेंगे: "यह आप किस आधार पर कहते हैं कि हम समय बिगाड़ रहे हैं? यह प्रेतविद्या और भविष्य-विद्या तो शास्त्र हैं। अिन पर तो बड़ी बड़ी पुस्तकें लिखी गअी हैं। हम अुनके अध्ययनमें अपने समयका सदुपयोग करते हैं। शास्त्रोंका अध्ययन करनेको क्या आप बेकार समय खोना कह सकेंगे?" मनुष्य जब अपने-आपको धोखा देने लगता है तब कहां तक पहुंचता है, अिसका क्या यह अेक ज्वलन्त अुदाहरण नहीं है? 'शास्त्रोंका अध्ययन' शब्द-प्रयोगसे कोअी भी विचार शास्त्र नहीं बन जाते और मनपसन्द प्रवृत्ति शास्त्रोंका अध्ययन नहीं बन जाती। और सच्चा शास्त्राध्ययन तो जीवनमें हमें अधिक अुन्नत बनानेके लिअे ही हो सकता है। अिस दृष्टिसे सोचें तो अैसी प्रवृत्तियोंका हेतु क्या है? समय नहीं कटता, अुसे कैसे आगे धकेला जाय; कामके बिना मन खुश नहीं रहता, अुसे दो घड़ी विनोदका साधन कैसे दिया जाय, यही न?

पढ़े-लिखे लोग ही समय काटनेके अैसे साधन ढूढ निकालते हैं। जितने पढ़े-लिखे हैं वे सब जीवनका सदुपयोग ही करते हैं, अैसा नहीं है। अुन्हें भी मौज-शौक प्यारा है, आरामका जीवन प्रिय है, गंभीर कामोंसे अरुचि है। अिसलिअे अुन्हें भी दिनका बहुतसा भाग फालतू मिल जाता है। वे अपने ही जैसे पढ़े-लिखोंसे अैसा शास्त्राध्ययन करनेका फैशन देखकर आते हैं, पैसा पास हो तो अुससे संबंध रखनेवाली पुस्तकें खरीद लाते हैं और अपना समय बिगाड़ते हैं। युरोप-अमरीकामें अैसे 'शास्त्रों' की पुस्तकें लिखनेवाले बहुत लोग पैदा हो गये हैं और निठल्ले शिक्षितोंकी कमजोरीका लाभ अुठानेके लिअे अुनकी कीमत भी काफी बड़ी रखते हैं।

अुपन्यास पढ़ते रहना समय काटनेका अेक और प्रतिष्ठित ढंग है। अिसमें भी हम अपने मनको अनेक झूठे तर्कोंसे ठगते हैं। "अुपन्यास लिखनेवालोंमें जगतके बड़े बड़े साहित्यकार हो गये हैं और आज भी हैं, किसी गंभीर निबंधमें लेखक जो सिद्धान्त लिखता है वे जल्दी समझमें नहीं आते और समझमें आ जाय तो भी अुन्हें जीवनमें अुतारनेका हमें अुत्साह नहीं होता। वही सिद्धान्त दिलचस्प कहानीके रूपमें पढ़नेसे अपने आप हमारे खूनमें मिल सकते हैं। अैसा होनेसे ही बड़े बड़े कलाकार अुपन्यास लिखनेको प्रेरित होते हैं। तो हम अुनकी कलाका पान करें, अिसमें क्या बुराअी है?" कलाका पान करनेमें तो कोअी आपत्ति नहीं हो सकती, परन्तु कलामें डूब मरनेमें बड़ी आपत्ति है। अगर हम आलस्यको ही सुख मान लें और समय काटनेके खातिर ही पढ़ते रहें, तो रवीन्द्रनाथ या टॉल्स्टॉय जैसोंके अुपन्यास भी हमें कोअी लाभ नहीं पहुंचायेंगे। हमारे हाथोंमें आने पर वे विष बन जायेंगे। परन्तु अनुभव अैसा है कि जो अैसे वाचनका व्यसन बढ़ाते जाते हैं अुनकी दिलचस्पी अुदात्त विचारोंके अुपन्यासोंमें नहीं रहती। कृत्रिम और अनीतिभरी प्रेम-कहानियों और डाकुओंके तरह तरहके किस्सोंके बिना अुन्हें चैन नहीं पड़ता।

ये सब पढ़े-लिखे निठल्लोंके समय नष्ट कनेके रास्ते हैं। वे प्रतिष्ठित जैसे लग हैं। मनुष्य पड़े पड़े पढ़ता रहे तो किसीको लगेगा, वाह कैसा अध्ययनशील है प्लांचेटसे पूछता रहता हो तो किसीको खयाल होगा, कैसा श्रद्धालु है! शतर खेलता हो तो कोअी कहेगा, कितना बुद्धिबलवाला है! अिस प्रकार अिन मार्गोंकी प लिखोंकी दुनियामें प्रतिष्ठा होती है और अिसीलिअे अिन मार्गोंको अधिक भयंक समझना चाहिये, क्योंकि झूठी प्रतिष्ठासे वे हमें धोखा देते है!

अैसी निठल्लोंकी प्रतीक-रूप प्रवृत्तियोंको व्यसन समझकर छोड़ देना ही हमा लिअे अुचित है। अुनमें कितनी ही प्रतिष्ठा मानी जाती हो, शास्त्र माना जाता हो और बुद्धि दिखाअी देती हो, तो भी वे भयंकर है, क्योंकि अुनका हम पर नशा चढ़त है। अिसके सिवा, वे ज्यादा भयंकर अिसलिअे हैं कि अुनसे हमें समयके मूल्यका भा नहीं रहता।

हम सेवकोंके जीवनमें तो लोक-संग्रहकी दृष्टिसे भी वे दूर रखने लायक हैं क्या अपनी अिस समय काटनेकी शहरी बुराअीकी छूतको हमें गांवोंमें फैलाना है? सच मुच यदि आपको सेवकके अपने जीवनको बिलकुल निकम्मा बना डालनेकी सबसे मोहक, सबसे मीठी, किन्तु सबसे घातक दवा चाहिये, तो आज हमने समय बरबाद करनेकी जिस बुराअीकी चर्चा की अुसका सेवन आप करें।

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

चौथा विभाग

श्रम-धर्म

प्रवचन १९

‘महाकार्य’

अपने आश्रम-प्रवेशको सफल बनानेका ही जिसका दृढ़ संकल्प हो, अुसे आज मैं सफलताकी अेक कुंजी बताना चाहता हूं। यह कुंजी हममें से किसी किसीने आजमाकर देखी है और अुससे हमारा ताला खुला है।

आप कुछ न कुछ आशाअें लेकर आश्रमकी शिक्षा लेने आये हैं। अुत्साह और जोश आपमें छलके पड़ते हैं। आश्रमी शिक्षाकी कठोरताके बारेमें आपने बहुत कुछ सुना है, फिर भी सेवक बननेकी लगन होनेके कारण आप अुसकी परवाह किये बिना यहां आये हैं। अपने अिस आन्तरिक अुत्साहसे आप आश्रम-जीवनकी कठोरसे कठोर बातका सामना कीजिये। आज आपका हृदय सचमुच अिसके लिअे तैयार है। कठिनसे कठिन बात भी आज आपको आसानसे आसान लगेगी। आश्रमकी कठोरताको जीतनेका आज आपके लिअे सच्चा अवसर आया है। लोहा गरम होकर लाल हो गया है। ठंडा होनेसे पहले ठोक-पीटकर अुसकी मनचाही शकल बना लीजिये। नहरमें पानी आया है। नहरका द्वार बन्द हो जानेसे पहले अपने खेतमें आप पानी ले लीजिये। जमीन बरसातके पानीसे गीली हो गअी है, अुसके सूख जानेसे पहले अुस पर हल चला लीजिये।

देखिये, यह युक्ति अच्छी तरह समझ लीजिये। यह कुंजी है कठिनसे कठिन वस्तु पर सबसे पहले जोर आजमाना। युद्धके तरह तरहके व्यूह होते हैं। आम तौर पर पहले कुम्भकरण, फिर अिन्द्रजित और अन्तमें रावण, अिस प्रकार छोटे शत्रुओंको पराजित करते करते अन्तमें सबसे बलवान शत्रुका सामना किया जाता है। परन्तु मैदानमें आते ही जड़में कुल्हाड़ी मारना, सबसे बड़े शत्रुको शुरूमें ही गिरा देना, भी दूसरा अेक अद्भुत व्यूह है। जड़को काट देने पर पेड़के डाल-पत्तोंको काटनेकी जरूरत ही नहीं रहती। अुनका जीवन-स्रोत सूख जानेसे वे अपने-आप सूख जाते हैं। अिस व्यूहमें खतरा है, साहस है। परन्तु अिसीलिअे शूरवीर योद्धाओंको अिस व्यूहमें मजा आता है।

यदि आप आश्रमकी सब कठोरताओंको अेक ही आक्रमणमें धराशायी कर देना चाहते हों, तो सबसे पहले दलबल-सहित आपको ‘महाकार्य’ पर ही धावा बोलना चाहिये। पाखाना-सफाअीके कामको — भंगीके कामको — हमने ‘महाकार्य’ का बड़ा नाम दिया है। अिसे करनेका रस जिसे लग गया है, अुसे दूसरा कौनसा काम, अथवा दूसरा कौनसा अंग, घबराहटमें डाल सकेगा?

आज लोगोंमें अेक अत्यन्त विपरीत विचारकी लहर दौड़ रही है। काम करनेमें दुःख माना जाता है और निठल्ले बैठे रहनेको, आलस्यमें समय बरबाद करनेको सुख

समझा जाता है। लोग कहेंगे: "धनी आदमी काम करके शरीरको थकाये तो फिर अुसने धन किसलिअे कमाया है? विद्वान मनुष्य यदि काम करनेमें समय गंवाये तो फिर अुसकी विद्याकी सार्थकता क्या? राजा अगर काम करके मैला-कुचैला बने तब लड़भिड़ कर अुसने राज्य किसलिअे जीता? काम मजदूर करे धनवान नहीं; काम अपढ़ करे विद्वान नहीं; काम रैयत करे राजा नहीं।"

आजकी दुनियामें अिसे न्याय माना जाता है। परन्तु अुससे दुनिया दुःखी है, अिसीलिअे हम अुस न्यायको नहीं मानते। सच्चा न्याय अिससे अुलटा है। काम करनेमें हम दुःख नहीं परन्तु सुख मानते हैं। छोटे बच्चोंके लिअे जैसा खेलना-कूदना है, वैसा तन्दुरुस्त आदमियोंके लिअे काम है। काम करनेसे थकान तो मालूम होती है; परन्तु बच्चोंको खेलने-कूदनेमें क्या थकान नहीं लगती? थकानके डरसे क्या वे कभी खेल छोड़नेको तैयार होते हैं? थकान तो मीठीसे मीठी चीज है। काम करनेके बाद थकान अुतारनेमें जैसी मिठास मालूम होती है, वैसी मिठास दुनियाका कोअी पकवान खानेमें भी कभी मालूम हुअी है? काम करनेका आनन्द स्वयं न लेकर किसी मजदूरसे काम करानेको हम पकवानकी पत्तल दूसरेको सौंपकर बादमें जूठन चाटने जैसा मानते हैं।

अिसके सिवा, दुनियामें कामके बारेमें अेक और भ्रम चला आ रहा है। पता नहीं यह भ्रम कैसे फैला है। परन्तु लोग तो यही मानते मालूम होते हैं कि जो काम करता है अुसकी बुद्धि बिलकुल मारी जाती है, मन्द और जड़ हो जाती है। कुदालीसे खोदनेवाले और चक्की पीसनेवालेके हाथोंमें घट्टे पड़ना तो हम समझ सकते हैं, परन्तु अुसकी बुद्धिमें भी घट्टे पड़ जायं यह विचित्र कल्पना है। अनुभव तो यह है कि काम करनेमें बुद्धि तीक्ष्ण होती है, अुसका निश्चय-बल बढ़ता है। जैसे घोड़े पर चढ़कर जहां जाना हो वहां हम वेगसे पहुंच जाते हैं, वैसे बुद्धि भी काम पर सवार होकर ही वेगवान बनती है। अितना सही है कि सवार यदि घोड़े पर बैठा हो तो ही अुसे घोड़ेके वेगका लाभ मिलता है; वैसे ही बुद्धि यदि अुद्योगके साथ जुड़ी हुअी हो तो ही अुसे अुद्योगकी गतिका लाभ मिलता है।

यह ठीक है कि काम करनेवालोंकी बुद्धि बहुत बार जड़, निस्तेज और मन्द पाअी जाती है। यदि वे बेमनसे काम करें तो अिसके सिवा और क्या परिणाम आ सकता है? अैसे लोगोंका काम तो जैसे तैसे हो जाता है, परन्तु मन आलसी और मन्द रह जाता है। बात यह है कि शरीरका आलस्य मनुष्यको जितना मीठा लगता है, अुससे भी मीठा बुद्धिका आलस्य लगता मालूम होता है। अिसलिअे वे जैसे शरीरके श्रमसे बचते हैं वैसे बुद्धिके श्रमसे भी दूर रहते हैं। परन्तु शरीरमें अीश्वरने पेट और मुंह रखा है, जिसलिअे लोग जो सदा आलसी रहेंगे तो काम नहीं चलता। हाथ-पैर कुछ तो हिलाने ही पड़ते हैं। पेटके खातिर लोग खेती, पशु-पालन, हुनर-अुद्योग आदि-आदि काम करते हैं, परन्तु बेगार समझकर करते हैं; इसके सिवा, बुद्धि [illegible] करते हैं। जिससे अेक हद तक हाथ-पैरोंमें कुशलता जरूर आती है, लेकिन

बुद्धि अविकसित रह जाती है। यदि बुद्धिको साथ रखा जाय तो ये ही काम कितने प्राणवान और ज्ञानके स्रोत बन जायं?

आश्रममें हम दुनियाके अिस प्रचलित भ्रममें नहीं फंसना चाहते। हम बुद्धि और कामकी जोड़ीको साथ साथ चलाना चाहते हैं। अैसा करके हम कामके द्वारा बुद्धिका विकास करना और अुसे तेज बनाना चाहते हैं तथा बुद्धिके द्वारा कामको आसान और सफल बनाना चाहते हैं।

अिसके अलावा, लोगोंने अूंचे काम और नीचे कामके भेद कर दिये हैं। कुछ कामोंकी तो जाति ही स्त्री-जाति है! अुन्हें लड़के या पुरुष कर ही नहीं सकते! आटा पीसना, खाना पकाना, बरतन मांजना वगैरा काम 'स्त्रियां' हैं। अुनके मनसे लड़के जनाने बन जाते हैं! मनुष्य अकेला हो तो भूखा रहेगा अथवा बाजारमें जहां-तहां खाकर शरीरको बिगाड़ेगा, परन्तु खुद खाना कैसे बनाये? मां बीमार हो और परेशान हो रही हो, तो भी अुसे बरतन मांजनेमें या पीसने-कूटनेमें मदद कैसे दी जाय? चरखा चलानेका काम भी तो स्त्री-जातिका ही माना जाता था न? हम सब जानते हैं कि यह मान्यता दूर करनेमें गांधीजीको कितना परिश्रम करना पड़ा है।

अिसके सिवा, जैसे समाजमें जाति-पांतिके भेद पैदा कर दिये गये हैं और ब्राह्मणसे भंगी तकके अूंच-नीच भेदोंकी निसेनी बना दी गयी है, वैसे कामोंमें भी जातिभेद खड़े कर दिये गये हैं। अिनमें गंदगी साफ करनेसे सम्बन्ध रखनेवाले काम सबसे नीची जातिके हैं। रास्ता झाड़ना और पाखाना साफ करना भंगीके काम हैं, अितना ही नहीं, ये काम स्वयं ही भंगी हैं! ये काम केवल गंदे ही नहीं माने जाते, अिनमें कुछ न कुछ अधर्म — पाप भी माना जाता है! अिसलिअे लोग अपने घरके सामनेकी गली कितनी ही गंदी हो तो भी अुसे बुहारनेको तैयार नहीं होंगे। अपने घरका पाखाना नरकसे भी बुरा बन जाने देंगे, परन्तु अुसे धोयेंगे नहीं। वे मनमें कहेंगे, "अिस लोककी गंदगी सहन करना अच्छा है, परन्तु अधर्म करके अगले जन्ममें नरक भोगना ठीक नहीं।"

हम आश्रममें कामोंके बारेमें अैसे जातिभेद भी नहीं रखते और वर्णभेद भी नहीं रखते। हमारे यहां न तो कोअी काम अूंचा है और न कोअी काम नीचा है। न कोअी काम पुरुषका है, न कोअी काम स्त्रीका है। हम मानते हैं कि सभी अुपयोगी काम अूंचे हैं, पवित्र हैं, बल-वर्धक और बुद्धि-वर्धक हैं, मनुष्यसे हमें देवता बनानेवाले हैं।

हमारे यहां भी काममें अूंचे-नीचेका अेक अलग प्रकारका भेद जरूर है। जो काम केवल हमारे अपने लिअे हो वह नीचा और जो सबकी सेवाके लिअे हो वह अूंचा। हम अपने लिअे कातकर कपड़ा पहन लें यह काम अच्छा जरूर है, परन्तु आश्रमके लिअे या दरिद्रनारायणके लिअे कातना अूंचा काम है; खुद भोजन बनायें और खुद खायें यह ठीक है, परन्तु आश्रमके लिअे भोजन बनाना अूंचा काम है। सब

फावड़ा लेकर शौच जायं और अपना मल गाड़ दें यह जरूर अच्छा है, परन्तु आश्रमके पाखाने साफ करना अूंचा काम है, और सब आश्रमवासी मिलकर गांवके सार्वजनिक पाखाने स्वच्छ-सुन्दर बना आयें यह अुससे भी अूंचा काम है।

हमारे लिअे तो सबसे अूंचा काम वह है जिसमें सबसे अधिक सेवा हो। अिस प्रकार हमने भंगीके कामको आश्रमके सब कामोंका शिरोमणि माना है; अुसे 'महाकार्य' की पदवी प्रदान की है। अिस कामके करनेमें बिलकुल पाप नहीं है; अुलटे हरिजनोंकी लाचार दशाका लाभ अुठाकर अुनसे यह काम कराना ही हमारी दृष्टिमें पाप है। वही काम हम स्वयं अपनी घृणाको जीतकर सेवाभावसे करें, तो हमारे लिअे वह पवित्र बन जाता है।

काम करनेको लोग बड़े बड़े पहाड़ों पर बने हुअे सुदृढ़ और अजेय दुर्ग जैसा समझते हैं। कुछ कामोंका दुर्ग अिस विश्वासके पहाड़ पर बना होता है कि 'शरीर-श्रम दुःख है', तो किसीका दुर्ग आलस्य और अरुचिके पहाड़ पर बना होता है। कुछ कामोंका दुर्ग अूंच-नीचके भेदोंके पहाड़ पर, तो कुछका अिस अधार्मिक मान्यताके पहाड़ पर बना होता है कि 'अुसे करनेसे अधर्म हो जायगा'। अिनमें भी यदि किसी अेक कामका दुर्ग कठिनसे कठिन पहाड़ पर स्थित हो तो वह हमारे 'महाकार्य' का अर्थात् पाखाना-सफाअीका है। अिसके अलावा, अुसके चारों ओर घृणाकी गहरी खाअी होनेसे वह और भी दुर्गम बन गया है। आप नये-नये और अुत्साहभरे आये हैं, अिसलिअे मेरी सलाह है कि आप अिसी समय अुस पर छापा मारकर अुसे जीत लें। आप अिस दुर्ग पर अपना झंडा फहरा सकेंगे, तो फिर खाना बनाना, आटा पीसना, झाड़ू लगाना, पानी भरना वगैरा छोटे छोटे दुर्ग जीतनेके लिअे आपको अलग लड़ाअियां नहीं लड़नी पड़ेंगी। आपकी विजय-पताका सबसे अूंचे दुर्ग पर फहराती देखकर अिन छोटे दुर्गोंके दुर्गपति पस्तहिम्मत हो जायेंगे और सफेद झंडे दिखाकर आपके सामने सुलहके लिअे गिड़गिड़ाने लगेंगे।

प्रवचन २०

स्वच्छता-सैनिककी तालीम

'महाकार्य' के संबंधमें ही आज हम कुछ और बातें करेंगे।

बाहरके समाजसे यहां कोओी नया आदमी आ जाता है तो अुसकी समझमें यह नहीं आता कि हमारा स्थान खेतोंके बीचमें होने पर भी हम पाखाने क्यों रखते हैं? खुले खेतोंमें शौच न जाकर हम क्यों व्यर्थ ही नरकवास खड़ा करते हैं? अनावश्यक पाखाने खड़े करना और फिर अुन्हें मिट्टीसे ढाकना और साफ करना अिसमें क्या बुद्धिमानी है? यह पेट मलकर दर्द पैदा करना नहीं तो और क्या है? जहां गंदगी नहीं थी वहां स्वयं गंदगी पैदा करते हैं और फिर अुसकी सफाओी करते हैं! जहां कांटे नहीं थे वहां कांटे बोते हैं और फिर अुखाड़ने बैठते हैं! ये आश्रमवाले अव्यावहारिक कहे जाते हैं सो गलत नहीं है, वगैरा!

मैंने अैसी कुछ संस्थाअें देखी जरूर हैं, जो हमारी ही तरह गांवोंमें होती हैं। कोओी नदी किनारे या समुद्र-तट पर किसी रमणीय स्थान पर होती हैं, तो कोओी हमारी तरह खुले खेतोंमें। वहां अुन्हें हमारी तरह पाखाने रखनेकी जरूरत नहीं मालूम होती। नदीके किनारे रहनेवाले नदीका पवित्र किनारा बिगाड़ते हैं और समुद्र-तट पर रहनेवाले लोग सुन्दर चौपाटियां गंदी कर देते हैं। अिसके जैसा विचारहीन और समाज-द्रोही कृत्य और क्या हो सकता है? परन्तु संस्थायें जैसा करती हैं वैसा ही आसपासके गांवोंके लोग भी करते हों तो कौन किससे कहे?

खुले खेतोंवाली संस्थाअें जब अैसा व्यवहार करने लगती हैं और पड़ोसियोंके खेतोंका अुपयोग शौचके लिअे करती हैं, तब वे नदी-किनारेवालोंकी तरह बच नहीं पातीं। अुन्हें खेतोंके मालिकोंकी गालियोंकी प्रसादी अच्छी मात्रामें चखनी पड़ती है। अैसे अवसर पर संस्थावासी अपनी मूर्खता न देखकर अुलटे किसानोंको ही दोष देते हैं: "कैसे जड़ हैं हमारे देशके किसान! वे खादका मूल्य ही नहीं जानते!" किसान खादकी कीमत आपसे कुछ अधिक जानते हैं। परन्तु खाद डालनेकी यह कौनसी पद्धति है? जिन खेतोंमें अुन्हें दिनरात काम करना होता है, जिन खेतोंकी मिट्टी अुन्हें रोज रौंदनी पड़ती है, अुन खेतोंके लोग यह कैसे सहन कर सकते हैं कि वहां मलमूत्रकी दुर्गंध फैले?

हमारे आश्रमके खेतोंको जब पड़ोसियोंके बच्चे बिगाड़ते हैं, तब हमें वह कहां बरदाश्त होता है? अिन खेतोंमें हम नींदने वगैराके काम करने जाते हैं, शामके समय घूमने घूमने जाते हैं और लेट भी लगाते हैं। हमारी अिच्छा नहीं होती है कि वे

क्यों की जाय? हमारे अिस आश्रममें भी बहुत शुरूके ... भी तब अुपरके जैसे ही थे। हम भी नहीं मानते

थे कि खेतोंमें शौच जायेंगे तो खेतवालोंको खादका लाभ मिलेगा। पड़ोसी भले थे, परन्तु भले स्त्री-पुरुष भी गंदगीको कब तक सहन करते? अुनकी भलाअी अितनी बड़ी थी कि वे लाठी लेकर हमें मारने नहीं आये। परन्तु धीरे-धीरे असंतोष बढ़ने लगा, हम समझ गये।

फिर भी हमें पाखाने बनानेका विचार नहीं आया। हमने फावड़ा या कुदाली लेकर शौच जानेका रिवाज डाला। खेतमें ही शौच जाते थे, परन्तु प्रत्येक मनुष्य गड्ढा खोदकर बैठता और अुठते समय अुसे मिट्टीसे ढंक देता था। परन्तु अिस सुधारसे भी लोगोंकी नाराजी मिटी नहीं। अुन्हें यह विश्वास कैसे हो कि हम सब सावधानीसे मलको गाड़ देते हैं? और अिस तरह गाड़ देनेसे अुनकी कठिनाअियोंका अन्त भी नहीं होना था। अुलटी अुनकी चिन्ता बढ़ जाती थी। अुन्हें यह डर बना ही रहता कि काम करते हुअे न मालूम कब मिट्टीके साथ मैला हाथमें आ जायगा!

अिसलिअे कुछ समय तक हम खड्डों और बबूलकी झाड़ियोंमें जाते रहे। परन्तु अिससे मनको जरा भी संतोष नहीं होता था। यह विचार सदा ही खटकता रहता था कि अिस तरह खाद बेकार जाता है। हमारी गंदगी स्वयं हमें, आसपास घूमनेवाले लोगों और ग्वालोंको कष्टदायक होती थी। अिसके सिवा, हमारा समय-सूचक भी अुलाहना देता रहता था। क्योंकि अैसे स्थान आश्रमसे काफी दूर होते थे। शौच जाकर लौटना कमसे कम घण्टे पौन घंटेका काम हो जाता था। यह हमारे लिअे असह्य था।

अन्तमें हम अिस निर्णय पर पहुंचे कि पाखाने रखने ही चाहिये। और कोअी गन्दा होता तो अुसे निर्णयके बाद भी कठिनाअी रहती ही, क्योंकि पाखाने बनाने पर भंगी जुटानेका प्रश्न खड़ा हो जाता। हमारे जैसे छोटेसे गांवमें यह सुलभ नहीं होता। परन्तु हमारे सामने यह प्रश्न नहीं था। हम तो खुद सफाअी-काम करनेको तैयार थे। अिस सिद्धान्तको तो मानते ही थे कि हमें खुद सफाअी करनी चाहिये। और भीतर ही भीतर कुछ घृणा रही होगी, तो वह जितना समय बीत जानेसे मिट चुकी थी।

अिस प्रकार अब यह लगता है कि हमने आश्रममें पाखाने शुरू करके बड़ा ही अच्छा कदम अुठाया, क्योंकि अिसके बिना आश्रमी शिक्षाका अेक महत्वपूर्ण अंग अधूरा रह जाता था।

पहले तो हमारे मनमें यह आया कि पाखानेका अुपयोग अितनी सावधानीसे किया जाय कि वह जगह भी खराब न हो। कोअी भंगी आकर पाखाना साफ कर जाता है, तब लोग पाखानेकी कोठरीको बहुत ही बुरी तरह गंदी कर डालते हैं। [illegible] किसे नहीं है? वे मिट्टीसे पाखाना ढकनेका विचार नहीं करते और [illegible] करते हैं या अुसे अच्छी तरह ढकनेकी परवाह नहीं करते। बैठक, बालटी, [illegible] के बारेमें विचार किये बगैर [illegible] जिसने या पूछनेमें कुछ भी विचार नहीं किया [illegible]। जिसका [illegible] तक नहीं आता कि हमारे ही किसी भाईको [illegible]

गंदगी साफ करनी है, अिसलिअे अिस तरह पाखानेका अुपयोग करें कि अुसे तकलीफ न हो।

शहरोंके पाखानोंमें तो दुगुनी कठिनाअी होती है। लोगोंको खुद धोनेकी घृणा होती है। और भंगीको छू जानेके डरसे वहां घुसने नहीं देते। अिस प्रकार भंगीको अनावश्यक दुःख देते हैं और खुद भी स्वच्छताका सुख भोगना नहीं जानते। अिससे पाखाना अितना गंदा रहता है कि अुसका नाम सुनकर ही हमें घृणा होती है।

आश्रममें हमने स्वयं सफाअी करनेका नियम रखा है। अिसलिअे अब अुसका रूप ही बदल गया है। पाखानेकी कोठरीको हम किसी स्वच्छ, शान्त और हवा-रोशनीवाले अेकान्त वाचनालय जैसी रख सकते हैं। अब तो स्वच्छ पाखानोंका अनुभव करनेके बाद कभी शहर या गांवके पाखानोंमें जानेका अवसर आता है, तो हमारा दम घुटने लगता है। अिसमें शका नहीं कि आप नये आश्रमवासियोंको भी थोड़े समयमें अैसा ही अनुभव होने लगेगा।

हम आश्रमवासी दो महान सुख सहज ही भोग रहे हैं, जो बाहर रहनेवाले लोगोंके लिअे लगभग दुर्लभ हैं। अुनमें से अेक है हमारा स्वच्छ पाखाना और दूसरा है खुले आकाशके नीचे सोना। बाहर जाने पर अिन दोनों सुविधाओंके अभावमें हमें पानीसे बाहर रहनेवाली मछलीके जैसी बेचैनी होती है।

हम पाखाने खुद साफ करने लगे, अिससे हमारे आचार-विचारमें कुछ मौलिक परिवर्तन हो गये हैं। पहले गंदगीसे हमें घृणा होती थी, गंदगी देखी कि वहांसे भागनेका जी होता था। जबसे पाखाने स्वयं साफ करनेका हमने अनुभव किया है, तबसे अिस तरह गंदगीसे भागनेमें शर्म महसूस होती है। अुसके साथ युद्ध कर लेनेकी अिच्छा होती है। कहीं गन्दे पाखाने देखते हैं तो झाड़ू, पानी वगैरा साधनोंसे अुन गंदी कोठरियोंकी कामचलाअू सफाअी करनेका मन हो जाता है।

खुद सफाअी करने लग जानेसे दूसरा और सबसे बड़ा लाभ हमें यह हुआ है कि भंगीका काम करनेवाले स्त्री-पुरुषोंके प्रति हमारी सहानुभूति अधिक गहरी हो गयी है। अब हमारी समझमें आता है कि किसीकी गरीबी और लाचारीसे लाभ अुठाकर अुसे अपना भंगी बनाना महापाप है।

अब हमारी समझमें यह भी आता है कि किसीसे भंगीका काम लेना जरूरी हो, तो भी सफाअीके साधन अैसे रखने चाहिये जिनसे अुसका काम जरा भी गंदा न रहने पाये। यह काम करने आये तब घरके मालिकको अुसके साथ रहकर कांटा अुठाने और पानी डालकर पाखाना धुलवानेमें मदद करनी चाहिये।

अैसे विचार बन जानेके बाद हमारे हृदयके किसी कोनेमें भी अस्पृश्यताकी पापपूर्ण भावना रह ही कैसे सकती है? हमारे अेक देशबंधुको अछूत माननेका रिवाज हमारे देशमें कैसे पड़ा होगा, अिसके अैतिहासिक कारण भले कुछ भी हों, परन्तु मुझे तो अिसकी अुत्पत्ति आलसकी पूजासे ही हुई दीखती है।

कितनी भयंकर है हमारे लोगोंकी घृणा! घृणाके मारे वे कितने विचारहीन और पागल जैसे बन जाते हैं! अुनके लिअे पाखाना बना दिया जाय और पासमें मिट्टीका ढेर रख दिया जाय, तो भी वे अुस काममें नहीं लेंगे। पीछे घूमकर मल पर मिट्टी डालनेमें अुन्हें कंपकपी हो आती है! वे खुलेमें ही शौच जायगे। अिसमें भी दूर जानेका आलस्य होता है; और खेतमें बैठने लगें तो किसान शोर मचाते हैं। अिसलिअे वे गावके निकटवर्ती तालाबों, नदियोंके किनारों अथवा रास्तों पर बैठते हैं। अिसके फलस्वरूप तालाब-नदीका पानी खराब होता है, जाने-आनेवाले ग्रामवासियोंके पैर खराब होते हैं और गावमें घुसते ही आसपास भयंकर दुर्गन्ध अुठती है। आज प्रत्येक गांवकी स्थिति अैसी हो गयी है।

घृणाके कारण हमारी बुद्धि बिलकुल जड़ हो गयी है। हमें सूझता ही नहीं कि गंदगी न होने देनेके लिअे किन नियमोंका पालन करना चाहिये। गंदगी साफ करनेका अच्छेसे अच्छा तरीका ढूंढ़नेका अुपाय भी हमें नही सूझता। हमारी घृणावाली बुद्धिने हमें यही सुझाया कि सफाअी-काम करनेवाले लोगोंको हम दूर रखें और अुनका स्पर्श न करें। 'कैसे मैले लोग हैं!' यह कह कर हम मुह बनाते हैं और अुनसे दूर भागते हैं। अुन्हें स्पर्श नही करते, अुन्हें पास नहीं आने देते और गांवमें रहने भी नही देते। हमारी घृणा तो सीमा पार कर चुकी है। हमने अुसे धर्म ही बना डाला है। हरिजनोंको गावके कुअेंसे पानी नहीं भरने देते, अुनके बच्चोंको गावकी पाठशालामें पढ़ने नही आने देते, बीमार हो जायं तो अुनको दवादारू नही करते; यहां तक कि भगवानके देवालयोंमे भी हम अुन्हें दर्शन करने नही आने देते!

अैसी विचारहीन घृणासे हमने हरिजनोंका तो द्रोह किया ही है, साथ ही घृणा करते करते हम खुद भी गंदगीके नरकसे घिर गये हैं। हमारे रास्ते, हमारे पाखाने, हमारे कुअें-बावड़ी, हमारे नदी-तालाबोंके किनारे और हमारे गांव जैसे गंदे हो गये हैं, वैसे दुनियामें कहीं भी नही होंगे। यह हमारी घृणाके पापका ही फल हमें मिला है।

अिस तरह गंदगीसे घृणा रखकर पागलोंकी तरह अुससे दूर भागनेमें क्या मनुष्यता है? हमारा 'महाकार्य' अिस घृणाको जीतनेकी हमें सुन्दर शिक्षा देता है। अिसके सिवा, हमें अपनी ही घृणाको जीतकर और सफाअीसे रहकर संतोष नही कर लेना है। हमें स्वच्छताके वीर सैनिक बनना है। हम अपने सारे देशको गंदगीके कलंकसे अुबारना चाहते हैं। हमारी प्रजा अेक जमानेमें पवित्रताकी पुजारी बन गयी थी। हमें फिरसे अुसे वैसी ही बनाना है। अिसी भावनासे हमने आश्रममें पाखाने रखे हैं और हम अुन्हें खुद ही साफ करनेका शौक अपनेमें बढ़ाते हैं।

युग-युगसे दलित स्थितिमें रहते आये, अस्पृश्य माने जाते रहे हरिजन गंदगीके सहवासके आदी हो जाते हैं, अिसलिअे वे स्वयं अपनेको नीचे और गंदगी भोगनेको पैदा हुअे मानते हैं। अुनसे यह आशा कैसे रखी जा सकती है कि वे हिम्मत करके अूपरकी मांगें आज ही समाजके सामने पेश कर देंगे? परन्तु अुनके कामका अनुभव रखनेवाले हम जैसे लोग अुनकी जरूरतें अुनसे अधिक जान सकते हैं। ये जरूरतें पूरी करानेके लिअे अुनकी तरफसे लड़ना हमारा पवित्र कर्तव्य हो जाता है।

सचमुच पाखाना-सफाअी करनेसे हरिजनोंके प्रति हमारा रवैया अेकदम बदल जाता है। हम अुनके अुपकारकी कदर अच्छी तरह समझ सकते हैं। अुनके दुःखसे हम दुःख अनुभव कर सकते हैं। अुनके प्रति हमारे मनमें सहानुभूति पैदा होती है। अस्पृश्यताका कलंक हमें असह्य हो अुठता है और हमें लगता है कि हरिजनोंके खातिर हम जितना बलिदान दें अुतना थोड़ा ही है। यह स्वाभाविक है कि हरिजनोंके मनमें भी केवल वाणीकी सहानुभूति दिखानेवालोंकी अपेक्षा अुनका काम करनेवाले हम जैसोंके प्रति अधिक प्रेम और आदर पैदा हो।

हमारे आश्रममें शुरूमें कोअी हरिजन सदस्य नहीं थे। जबसे हमने पाखाना-सफाअी जारी की, तबसे आश्रमकी अिस बड़ी कमीके लिअे हमारा मन दुःखी रहा करता था। दिलमें हमेशा यही लालसा बनी रहती थी कि हरिजन आश्रममें हम सबके साथ रहें, खाने-पीनेमें, कामकाजमें, सेवामें हम सब ओतप्रोत होकर रहें। आश्रमकी जिस शिक्षाको हम सच्ची शिक्षा मानते हैं अुसका रसास्वादन करके वे भी अपनी योग्यता बढ़ायें तो कैसा अच्छा हो!

यों तो हमारे यहां थोड़े हरिजन जुलाहोंके परिवार रहते ही हैं। अुनको नियमित धंधा देकर, अुनके साथ समानता और प्रेमका संबन्ध रखकर हम सहज ही अुनकी कुछ न कुछ सेवा कर सकते हैं, यह बड़ा लाभ है। यद्यपि वे केवल धंधेके लिअे ही हमारे पास रहते हैं, फिर भी आश्रम-जीवनका कुछ न कुछ असर अुन पर जरूर पड़ता है। अुनके घरोंमें सफाअीकी लगन बढ़ती है, बोलने-चालनेमें भी विवेक और सभ्यता बढ़ती है, अुनके पारिवारिक जीवनमें मारपीट और लड़ाअी-झगड़े काफी घट जाते हैं, प्रामाणिक व्यवहार और सत्य आदि गुण भी अुनमें विकसित होते देखे जाते हैं। गरीबीके कारण यह आशा रखना बहुत अधिक होगा कि वे पैसेके आकर्षणको अेकदम जीत लें। अिसलिअे वे दो पैसे अधिक कमानेकी दृष्टिसे देर तक करघा चलाते रहते हैं और आश्रम-जीवनके प्रार्थना, कताअी-यज्ञ वगैरा कामोंमें शरीक नहीं होते।

फिर भी अितना तो मालूम होता ही है कि दूर रहते हुअे भी वे आश्रम-सार निकाल कर अुसे अपने जीवनमें गूंथ लेते हैं। अिसके कुछ लक्षण मैं अूपर... हूं। अिसके सिवा, वे धीरे-धीरे अपने कपड़ोंमें खादीका अुपयोग बढ़ाते जा... ...देशको पहचानने लगे हैं

प्रवचन २१

अस्पृश्यता-निवारणकी कुंजी

कल हमने देख लिया कि हमारे पाखानोंका और स्वयं पाखाना-सफाअी करनेका हेतु यह तो है ही कि हमें सफाअीसे रहनेको मिले, परन्तु अुतना ही हेतु नहीं है। हम अिस कामके जरिये स्वच्छता-नैतिककी तालीम भी पा रहे हैं। हम देशमें पाखाना-सफाअीकी घृणाको निकाल कर लोगोंमें स्वच्छताका शौक, सफाअीके कामका शौक, फैलाना चाहते हैं।

परन्तु क्या आप जानते हैं कि अिसके पीछे अिससे भी बड़ा अेक तीसरा हेतु है? वह हेतु है सफाअीका काम करनेवाले परम अुपकारी हरिजनोंकी प्रतिष्ठा बढ़ानेका; देशमें से अस्पृश्यताके पापको जड़से अुखाड़नेका।

भंगी अपना धंधा दबकर, डरकर, पेट भरनेका दूसरा कोअी साधन न होनेकी लाचारीसे करते हैं। वे दुनियाके सामने सिर अूंचा नहीं कर सकते। अैसी हालतमें वे लोगोंसे यह मांग करनेकी हिम्मत कहांसे लायें कि पाखानेमें अैसे साधन रखिये जिससे हमारे हाथ-पांव वगैरा अंग खराब न हों, और मिट्टी काममें लीजिये? यह कहनेका साहस भी वे कहांसे बटोरें कि अगर हमसे पाखाना साफ कराना हो तो अुसकी कोठरी बड़ी बनाअिये और हमें अुसके भीतर आने दीजिये? तब फिर यह तो वे कह ही कैसे सकते हैं कि जब हम काम करने आयें तब घरवाले हमारी मदद करें? यह मांग भी वे कैसे कर सकते हैं कि हम सिर पर मैला अुठानेको तैयार नहीं हैं, अिसलिअे हम कहें वैसी गाड़ियां हमें दीजिये और मैला गाड़नेके लिअे काफी जमीन दीजिये? और यह मांग करनेकी हिम्मत भी अुनकी कैसे हो कि हमारे नहाने-धोनेके लिअे स्नानागार बनवा दीजिये और अुनमें काफी मात्रामें पानीकी व्यवस्था कीजिये?

अैसी मांग कोअी हरिजन करें तो गांववाले या नगरपालिकाके सदस्य बड़ी-बड़ी आंखें निकालकर अुन पर गुर्रायेंगे; अुन्हें डरा-धमका कर चुप कर देंगे। यह अुनकी बुद्धिमें ही नहीं आयेगा कि भंगियोंकी ये मांगें अुचित हैं। परन्तु हम, जो पाखानोंकी सफाअीका काम करते हैं, अपने अनुभवसे तुरत समझ लेते हैं कि ये मांगें जैसी होनी चाहिये अुनसे बिलकुल हलकी हैं। क्योंकि हम अनुभवसे जानते हैं कि अूपर बताअी हुअी सुविधाओंमें से अेक भी सुविधा कम हो, तो हम पाखाना-सफाअीका काम करनेको कभी तैयार नहीं होंगे। अैसे साधन दिये बिना किसी भी मनुष्यसे पाखाना-सफाअीका काम कराना कितना भयंकर जुल्म है, यह हमारे जैसे अनुभवी जितना समझ सकते हैं अुतना और कोअी समझ नहीं सकता। हम केवल समझ ही नहीं सकते, परन्तु यदि हमारे गांव या शहरमें हमारी कुछ भी चले तो हम खुद ही आगे होकर हरिजनोंको अैसी सुविधायें दिलायेंगे।

युग-युगसे दलित स्थितिमें रहते आये, अस्पृश्य माने जाते रहे हरिजन गंदगीके सहवासके आदी हो जाते हैं, अिसलिअे वे स्वयं अपनेको नीचे और गंदगी भोगनेको पैदा हुअे मानते हैं। अुनसे यह आशा कैसे रखी जा सकती है कि वे हिम्मत करके अपनी मांगें आज ही समाजके सामने पेश कर देंगे? परन्तु अुनके कामका अनुभव रखनेवाले हम जैसे लोग अुनकी जरूरतें अुनसे अधिक जान सकते हैं। ये जरूरतें पूरी करानेके लिअे अुनकी तरफसे लड़ना हमारा पवित्र कर्तव्य हो जाता है।

सचमुच पाखाना-सफाअी करनेसे हरिजनोंके प्रति हमारा रवैया अेकदम बदल जाता है। हम अुनके अुपकारकी कदर अच्छी तरह समझ सकते हैं। अुनके दुःखोंसे हम दुःख अनुभव कर सकते हैं। अुनके प्रति हमारे मनमें सहानुभूति पैदा होती है। अस्पृश्यताका कलंक हमें असह्य हो अुठता है और हमें लगता है कि हरिजनोंके खातिर हम जितना बलिदान दें अुतना थोड़ा ही है। यह स्वाभाविक है कि हरिजनोंके मनमें भी केवल वाणीकी सहानुभूति दिखानेवालोंकी अपेक्षा अुनका काम करनेवाले हम जैसोंके प्रति अधिक प्रेम और आदर पैदा हो।

हमारे आश्रममें शुरूमें कोअी हरिजन सदस्य नहीं थे। जबसे हमने पाखाना-सफाअी जारी की, तबसे आश्रमकी अिस बड़ी कमीके लिअे हमारा मन दुःखी रहा करता था। दिलमें हमेशा यही लालसा बनी रहती थी कि हरिजन आश्रममें हम सबके साथ रहें, खाने-पीनेमें, कामकाजमें, सेवामें हम सब ओतप्रोत होकर रहें। आश्रमकी जिस शिक्षाको हम सच्ची शिक्षा मानते हैं अुसका रसास्वादन करके वे भी अपनी योग्यता बढ़ायें तो कैसा अच्छा हो!

यों तो हमारे यहां थोड़े हरिजन जुलाहोंके परिवार रहते ही हैं। अुनको नियमित धंधा देकर, अुनके साथ समानता और प्रेमका संबन्ध रखकर हम सहज ही अुनकी कुछ न कुछ सेवा कर सकते हैं, यह बड़ा लाभ है। यद्यपि वे केवल धंधेके लिअे ही हमारे पास रहते हैं, फिर भी आश्रम-जीवनका कुछ न कुछ असर अुन पर जरूर पड़ता है। अुनके घरोंमें सफाअीकी लगन बढ़ती है, बोलने-चालनेमें भी विवेक और सभ्यता बढ़ती है, अुनके पारिवारिक जीवनमें मारपीट और लड़ाअी-झगड़े काफी घट जाते हैं, प्रामाणिक व्यवहार और सत्य आदि गुण भी अुनमें विकसित होते देखे जाते हैं। गरीबीके कारण यह आशा रखना बहुत अधिक होगा कि वे पैसेके आकर्षणको अेकदम जीत लें। अिसलिअे वे दो पैसे अधिक कमानेकी दृष्टिसे देर तक करघा चलाते रहते हैं और आश्रम-जीवनके प्रार्थना, कताअी-यज्ञ वगैरा कामोंमें शरीक नहीं होते।

फिर भी अितना तो मालूम होता ही है कि दूर रहते हुअे भी वे आश्रम-जीवनका सार निकाल कर अुसे अपने जीवनमें गूंथ लेते हैं। अिसके कुछ लक्षण मैं अूपर बता चुका हूं। अिसके सिवा, वे धीरे-धीरे अपने कपड़ोंमें खादीका अुपयोग बढ़ाते जा

और राष्ट्रीय अुत्सवों और सभाओं वगैरामें सबके साथ अुत्साहसे शामिल होने लगे हैं। आश्रमके सफाओी जैसे सार्वजनिक कामोंमें हम अुन्हें गीचनेका कोओी प्रयत्न नहीं करते, तो भी यहांके वातावरणमें वे अपना कर्तव्य समझ जाते हैं और काममें अपना भाग आग्रहके साथ मांग लेते हैं।

अैसे अेक जुलाहा परिवारने अपने अेक छोटे लड़केको आश्रमकी शिक्षा लेनेके लिअे हमें सौंपा था। अुनके अिस कामको मैं छोटा काम नहीं मानता। अुनकी स्थितिको देखते हुअे लड़केसे कुकड़ियां भरवाना ही अुनके लिअे स्वाभाविक होगा। और पढ़ानेका साहस करें तो भी बाजारमें चलनेवाली सरकारी शालाकी शिक्षा पानेका ही अुन्हें लालच होगा। वह बालक कुछ वर्ष यहां रहा था। आश्रम-जीवनके सभी कामोंमें वह सदा सबके साथ रहता था। वह अपनी जातिको बिलकुल भूल गया था और अपनेको आश्रमका ही सदस्य मानकर आनन्द करता रहा। आज भी वह आश्रम पर खूब ममता रखता है और अपने व्यक्तिगत जीवनमें आश्रमकी शिक्षाकी यथाशक्ति रक्षा कर रहा है। आप समझ सकेंगे कि समाजमें प्रचलित अस्पृश्यताके बुरे रिवाजका दर्द अपने दूसरे जाति-भाअियोंकी अपेक्षा वह कितना अधिक अनुभव करता होगा। अैसे अनेक युवक निकलें तो अस्पृश्यता अपने-आप मिट जाय, किसीको अछूत कहनेमें सवर्ण खुद ही शरमाने लगें।

हरिजन-सेवाका काम करनेवाले मित्रोंसे मेरी स्थायी प्रार्थना है कि आश्रम-शिक्षाका जिज्ञासु कोओी हरिजन मिल जाय तो अुसे आश्रमका नाम जरूर सुझाया जाय। परन्तु शिक्षित समाजमें से भी अिस सिंहनीका दूध पचानेकी अिच्छा रखनेवाले अधिक लोग कहां निकलते हैं कि हम हरिजनोंके अधिक संख्यामें न आनेका अफसोस करें? फिर भी कोओी साहसी भाओी कभी-कभी आ जाते हैं, अुस समय मुझे अैसा संतोष होता है कि हमारी अेक बड़ी कमी पूरी हुओी, आश्रमके चेहरे पर आंख ही नहीं थी वह मानो नओी निकल आओी।

अैसे हरिजन सदस्य जब आ जाते हैं, तब मेरे मनमें अेक परेशानी हमेशा बनी रहती है। अुन्हें और सब कामोंमें तो निमंत्रित करते हुअे मैं प्रसन्न होता हूं, परन्तु 'महाकार्य' में अुन्हें शरीक करनेको जी नहीं करता। और जिसे हमने 'महाकार्य' की पदवी दी, अुससे अुन्हें अलग रखना भी अच्छा नहीं लगता। अिस प्रकार दोहरी परेशानी होती है। पहले क्षण अैसा लगता है कि जिस धंधेने हरिजनोंको गंदगी और बेअिज्जतीमें ढकेल कर अस्पृश्य बनाया, अुसमें अुन्हें कैसे शामिल करूं? यहां आश्रममें तो मुझे अुन्हें अुजलेसे अुजला काम ही देना चाहिये, मुझे अुन्हें अिस तरह मान-सम्मानके साथ रखना चाहिये कि अपने अस्पृश्य जातिके होनेका स्मरण भी अुन्हें न हो। परन्तु दूसरे क्षण फिर विचार आता है: कोओी भी काम नीचा नहीं है। काम तो मनुष्यको अूंचा अुठाता है। यह आश्रम-विद्या क्या मैं अुन्हें न दूं? दूसरे सैनिक गंदगीको देशसे निकाल बाहर करनेका जो अुत्साह अनुभव करते हैं, अुस

त्साहको क्या आश्रमवासी हरिजन कभी अनुभव नहीं करेंगे? अुन्हें यह अनुभव यदि हो तब तो अुनके लिअे आश्रमकी शिक्षा व्यर्थ ही मानी जायगी।

अिस प्रकार मैं गहरे विचारमें पड़ जाता हूं, परन्तु हरिजन मित्र अुसे बहुत र टिकने नहीं देते। वे आमंत्रणकी बाट नहीं देखते। वे आश्रमके सब कामोंमें सबसे धिक अुत्साहके साथ जुट जाते हैं और 'महाकार्य' में भी किसीसे पीछे नहीं रहते। श्रम-शिक्षाकी गंगा अस्पृश्यताको कितने सुन्दर ढंगसे धो डालती है, यह दृश्य देख-र परम आनद हुअे बिना नहीं रहता।

अैसा विश्वास हो रहा है कि आश्रमी शिक्षा सच्चा और स्थायी अस्पृश्यता-वारण करती है। अिससे सवर्ण यह भूलता है कि वह अूंचा है और हरिजन अिस तको भूलता है कि वह नीचा है। अिससे सवर्ण गंदगीको घृणासे बाहर निकलता है और रजन गदगीको सहन कर लेनेकी आदतसे अूपर अुठता है। अिससे सवर्ण 'महाकार्य' के पावन बनता है और हरिजन स्वाभिमानके साथ 'महाकार्य' करनेकी कला सीखता अिससे सवर्ण और हरिजन दोनोंके हृदय प्रेम-ग्रंथिसे बंधते हैं और दोनों कंधेसे ा मिलाकर देशके स्वच्छता-सैनिकके पवित्र धर्मका पालन करते हैं।

'महाकार्य' करते समय आप अपने मनमें अैसे विचार करेंगे तो अुसमें आपको र्व आनन्द आयेगा। अिसमें से आप अलौकिक शिक्षा प्राप्त करेंगे। अिससे अस्पृश्यता-ारणके धर्मकी कुंजी आपके हाथमें आ जायगी।

प्रवचन २२

स्वयंपाक

यहां आते ही आपको हमारे अेक या दूसरे रसोअीघरमें भरती कर दिया गया अथवा यों कहिये कि रसोअीघरोंके पुराने सदस्योंने आपको पकड़ लिया है।

आप सोचते होंगे कि आश्रमके भले सज्जन हमारी कितनी परवाह करते हैं; रे भोजनकी व्यवस्था करनेको वे खास तौर पर अिकट्ठे हुअे हैं और आग्रह करके ाक रसोअीघर हमें कैसे खींच रहा है। परन्तु अब अितने दिनके अनुभवसे आप झ गये होंगे कि अिसमें अिन सज्जनोंकी केवल भलाअी ही नहीं थी। अुन्हें आपके न-पानकी व्यवस्था करनेकी चिन्ता तो थी ही, परन्तु असली चिन्ता आपको स्वयं-ाकके काममें लगा देनेकी थी! सब सदस्य आपको तरफ अिसी नजरसे देखते थे भोजन बनानेवाले साथीके रूपमें आप कैसे सिद्ध होंगे।

रसोअीघरके सुन्दर कार्यमें आपका अितने दिनका अनुभव कैसा रहा होगा? आपमें जो अभी तक चूल्हे पर अच्छी तरह काबू नहीं पा सके होंगे, अुन्हें धुअेंके कारण सुं मलनेके प्रसंग आते ही होंगे। खास तौर पर अैसे प्रसंगों पर क्या आपके मनमें

यह विचार नहीं आता: "आश्रममें अपने हाथसे भोजन बनानेका रिवाज अिन लोगोंने क्यों रखा होगा? अिसमें कितना समय खराब होता है? अितना समय कोअी और अधिक अुपयोगी तालीम लेनेमें बिताया जा सके तो कितना लाभ हो?"

आपको तो धुअेंके कष्टसे यह विचार सूझता होगा, परन्तु बहुतसे मित्र आश्रमी शिक्षाका कार्यक्रम दूर रहकर देखते है और अुसके कष्टोंकी कल्पना करके मनमें घबराते हैं। अुन्हें आश्रमके कष्टोंमें स्वयंपाक बड़ेसे बड़ा कष्ट लगता है।

मैं आपको रोज अलग अलग ढंगसे आश्रमी विचार समझा रहा हूं। अुस परसे आप समझ गये होंगे कि कष्टोंसे निबटनेकी आश्रमी पद्धति कुछ अलग ही है। आम तौर पर लोग कष्टोंसे भागते हैं; परन्तु हम कष्टोंका बहादुरीसे सामना करते हैं। अिसलिअे यदि यह मान लें कि स्वयपाक बहुत बडा कष्ट है, तो भी हम जानते हैं कि वह जीवनके साथ जुड़ा हुआ कष्ट है। अुससे भागनेसे कोअी लाभ नही होगा। तो फिर अुत्साहपूर्वक हसते-हसते अुसका सामना क्यो न किया जाय?

दूसरे, विचार करनेकी हमारी आश्रमी पद्धति अैसी है कि कोअी काम कष्टमय हो और फिर भी जीनेके लिअे करना जरूरी हो, तो न्याय यह है कि अुसे हम खुद ही करें, अपने लिअे कष्ट अुठानेका फर्ज हम दूसरे पर न डालें। कुटुम्बोंमें पुरुष अपना भार स्त्रियों पर डालकर खुद स्वयपाकके कष्टसे बचे रहते हैं। अपने आश्रममें हम अिस न्याय पर नही चलना चाहते। हम यहा स्त्रीके काम और पुरुषके काम, अैसा भेद नही करते। और करते भी हैं तो अिस तरह कि मेहनतके भारी काम पुरुष करें और तुलनामें हलके काम स्त्रिया करें। परन्तु भोजन बनाना, पीसना, कूटना, कपड़े धोना आदि काम नीचे और कष्टमय हैं, अिसलिअे वे स्त्रियोंके माथे मढ़े जायें, अैसा न्याय हम कभी पसन्द नही करेंगे।

अगर पुरुषोंकी तरह स्त्रियां भी रसोअी वगैरा कामोंको नीचा मानने लगें, तो हमारे परिवारोंकी क्या स्थिति हो? वे अुन्हें नीचा नहीं समझतीं, परन्तु अपने स्वाभाविक जीवन-कार्य मानकर अुन्हें प्रेमसे करती हैं, अुनमें अपनी सम्पूर्ण कला और आत्मा अुड़ेल कर करती है और अुन्हें करते हुअे सुखका अनुभव करती हैं। अिस प्रकार जो काम हमारी माताअें करती हैं, वह नीचा कैसे हो सकता है? कार्य-विभाजनके लिअे ये काम स्त्रिया करती है, परन्तु अिसलिअे पुरुष अुन्हें नीचा समझ कर जरूरत पड़ने पर भी करनेमें शरमाये यह कैसी विचित्र बात है? जीवनके किसी भी जरूरी कामकी तरह ये काम भी अच्छे और शुभ हैं और अुन्हें करनेमें किसीको न तो शरमाना चाहिये, न अपनी तौहीन समझनी चाहिये। अिनमें दूसरे किसी भी कामकी तरह जीवनकी शिक्षा और तालीम भरी हुअी है।

यह समझ कम होनेके कारण परिवारोंमें स्त्रियोंका जीवन कअी बार बहुत ही दुःखमय हो जाता है। बड़े परिवारोंमें अुनके सिर कामका बोझ बुरेसे ज्यादा आ

पड़ता है। स्त्रियोंके काम पुरुषोंसे हो ही नहीं सकते, जिस तरह समाजके सारे घरके पुरुष बेकार बैठे रहते हैं, किन्तु अुनको मदद नहीं करते। जिससे अन्तमें दोनोंकी हानि होती है। स्त्रियोंके शरीर अतिश्रमसे चूर हो जाते हैं और पुरुष घरके किसी भी काममें कुशल नहीं हो पाते।

आश्रम-परिवार अेक परिवार है, फिर भी घरसे अुसकी रचनामें फर्क है। यहां भी हम स्त्री, पुरुष और बालक रहते हैं, परन्तु हम सब यहां सेवकों अथवा विद्यार्थियोंके रूपमें आते हैं। केवल भोजन बनाकर और खा-पीकर सोना ही हममें से किसीका ध्येय नहीं है। जिसके सिवा, हमारा परिवार किसी भी घरसे बड़ा है। जिसलिअे स्वाभाविक रूपमें ही हम कामकाजका विभाजन करेंगे, तो अुसे घरकी अपेक्षा किसी दूसरे ही ढंगसे करेंगे। भारी काम ज्यादातर पुरुषोंके हिस्सेमें आयें और हलके काम नाजुक स्त्रियोंके हिस्सेमें आयें, जिस दृष्टिसे हम अुन्हें बांटते हैं।

साथ ही हमें यह दृष्टि भी रखनी चाहिये कि आश्रममें पुरुषोंको शिक्षा और सेवाके लिअे जितना अवकाश मिले अुतना ही स्त्रियोंको भी मिले। घरोंमें स्त्रियों पर सबके खान-पानकी व्यवस्था करने और बच्चोंको पालने-पोसनेकी ही जिम्मेदारी होती है; हमारे यहां तो बहनोंको कताओ, पिंजाओ और खादीशास्त्र वगैराका अध्ययन करना होता है। पुरुष-सेवकोंके हिस्सेमें खादी-कार्यालय, प्रचार, शिक्षा आदिके काम रहते हैं, अुसी तरह स्त्री-सेविकाओंको भी अिन कामोंका अनुभव कराना होता है।

खादीमें निपुण स्त्री-सेविकाअें आज नहीं हैं, अिसलिअे हम देहाती बहनोंके हृदयोंमें पूरी तरह प्रवेश नहीं कर सकते। बाल-शिक्षामें भी जब तक स्त्री-सेविकाअें नहीं होंगी, तब तक अुसका पूरा विकास नहीं हो सकता। अिसलिअे स्पष्ट है कि यहां हम घरकी तरह नहीं रह सकते और खाना बनाना, पीसना, कूटना, पानी भरना, झाड़ना-बुहारना और धोना वगैरा सब काम केवल स्त्रियों पर ही नहीं डाल सकते।

वास्तवमें देखा जाय तो घरोंमें भी स्त्रियोंका बोझ बढ़ न जाय और अुन्हें अध्ययनके लिअे तथा घरके कामकाजके अलावा कुछ सार्वजनिक सेवाके लिअे अवकाश रहे, यह दृष्टि सामने रखकर ही कार्य-विभाजन होना चाहिये। संस्कारी घरोंकी बहनें गांवके पिछड़े हुअे वर्गोंकी बहनोंमें चरखा, पिंजाओ, सिलाओ वगैरा सिखाने जा सकें, बीमारोंकी सेवा करने जा सकें तथा बच्चोंको शिक्षा देने जा सकें, तो गांवका जीवन कितना सुन्दर और अूंचा हो जाय?

यहां कोओ यह पूछ सकते हैं कि हम रसोअीघरके कामोंके लिअे रसोअिये रखें, पुरुषों और स्त्रियों दोनोंको अुन कामोंसे बचा लें और अुन्हें शिक्षाके लिअे काफी समय मिलने दें तो क्या अच्छा नहीं है? आपमें से तो यह दलील शायद ही कोओ करेगा। आप आश्रमकी अितनी बातें तो बिना कहे समझ गये हैं कि हम दरिद्रनारायणके सेवक हैं और सच्चे सेवक होना चाहते हैं। हमारे अैसे जीवनमें रसोअिये अथवा और किसी

नौकर-चाकरके लिअे कैसे स्थान हो सकता है? सेवकोंको दूसरे सेवकोंकी जरूरत पड़े तो वे जनताकी सेवा कैसे करेंगे?

परन्तु नौकर न रखनेका अितना ही कारण नहीं है। हमने आश्रमकी शिक्षाका जो पाठ्यक्रम रखा है अुसमें स्वयंपाकको अेक महत्त्वके विषयके रूपमें स्थान दिया है।

क्या आप यह सुनकर मन ही मन हंसते हैं? "हमारी संस्था गरीब है, हम नौकर नहीं रख सकते, अिसलिअे हमें सब काम हाथोंसे करने हैं, यों कहे तब तक तो हम समझ सकते हैं। परन्तु आपने तो स्वयंपाकको पाठ्यक्रममें दाखिल करके मामले आसमान पर पहुंचाना शुरू कर दिया!" आशा है आप यह तो नहीं कहते कि आपको चढ़ा-चढ़ाकर चूल्हेमें झोंकनेके लिअे हमने अैसा किया है। सचमुच ही अिस शिक्षाके बिना आश्रमी शिक्षा अधूरी रहती है।

अीश्वरकी बड़ी कृपा समझनी चाहिये कि जितने भी कामकाज हमारे जीवनके लिअे अधिक महत्त्वके हैं, अुन सबमें शिक्षाके अुत्तम बीज मौजूद हैं। जिस प्रकार हमारे खाने लायक जितनी भी वस्तुअें हैं अुन सबमें कुदरतने रुचिकर स्वाद भर दिया है, अुसी प्रकार अुसने सब अुपयोगी कामोंमें आनन्द और शिक्षा भर दी है।

जबसे हम स्वयंपाक करने लगे हैं, तबसे आहार और अुससे संबंध रखनेवाले अनेक विषयोंके बारेमें हमारी बुद्धि अलग ही ढंगसे काम करने लगी है। मुझे अिस बातमें कोअी शंका नहीं कि आपको भी अैसा ही अनुभव होगा। पहले तो अितना ही विचार आता था कि खाना स्वादिष्ट बना है या नहीं। खाना बनानेमें देर हो जाय तो अधीर बन जाते थे। अिसके सिवा शायद ही कोअी विचार आते थे। हमें पता ही न था कि अिस विषयमें हमें बहुत कुछ जानना, समझना और करना है।

चूल्हेके पास रोज २-३ घंटे बैठने पर अब हमें यह विचार आये बिना नहीं रहता कि क्या अैसा चूल्हा नहीं बन सकता जिसमें धुआं न हो? [illegible]

और रोज [illegible]

[illegible]

अनाजोंको पीस कर, दलकर, भुनाकर, पकाकर और अुनमें तरह तरहके मिर्च-मसाले डालकर खाना क्या ठीक है? कुदरतने जो सारी चीजें अिन फलोंमें शुद्ध ही कर दी है, अुन फलोंका अधिक सेवन करना क्या अुचित नहीं?

यदि बुद्धिपूर्वक स्वयंपाक करें तो अुससे अनायास हमें कैसे शिक्षा मिलती जाती है, जिसकी थोड़ी मिसालें ही मैंने यहां बताओी हैं। अिन सब विचारोंमें से ही किसी दिन हम अैसी सच्ची राष्ट्रीय खुराककी खोज कर सकेंगे, जिसमें बल, बुद्धि और आयुष्य बढ़ानेवाले तत्त्व हों, जो देशके गरीबसे गरीबको मिल सके, जिसे तैयार करनेमें कमसे कम समय लगे तथा अग्नि और मसालोंका कमसे कम अुपयोग करना पड़े।

अिसके सिवा, यदि हम कुशल स्वयंपाकी बनेंगे तो ही हमारी नजर केवल अूपरी स्वाद पर न रहकर खुराकके छिपे हुअे सूक्ष्म स्वादोंकी तरफ जायगी। पहले गलत रंगोंके धब्बे लगाना, फिर अुन्हें दबानेके लिअे दूसरे रंग चढ़ाना और दूसरे रंगोंको दबानेके लिअे तीसरे प्रकारके रंग चुपड़ना, यह कुशल चित्रकारका काम नहीं है। अिसी तरह कुशल स्वयंपाकी बन कर जब हम सूक्ष्म स्वादोंके पारखी बनेंगे, तब मसालोंके स्थूल स्वादोंसे अिन सूक्ष्म रसोंको दबाते समय हमारे हाथ कांपेंगे। अिस प्रकार यदि हम स्वयंपाककी सच्ची शिक्षा लेंगे, तो स्वादके सच्चे जानकार बनेंगे और यह भी सीखेंगे कि अिसीका दूसरा नाम संयम है।

अलबत्ता, किसी रसोअियेकी तरह हम यांत्रिक ढंगसे रसोअी बनायेंगे, तो अिनमें से अेक भी चीज हमें प्राप्त नहीं होगी। हम तो स्वयंपाकको शिक्षा मानकर ही करेंगे। हम गहरे अुतर कर, दिलचस्पी लेकर, बुद्धि लगाकर तथा आत्मा अुड़ेलकर स्वयंपाक करेंगे और अुसमें से यह शिक्षा और अिससे भी कहीं अधिक समृद्ध शिक्षा प्राप्त करेंगे।

प्रवचन २३

पावन करनेवाला पसीना

हम सब रोज सवेरे तो नहाते ही हैं। परन्तु शाम पड़ने पर नहानेका मन किस किसका होता है, यह मुझे आज जानना है।

यों तो आपमें से कुछ लोग पानीके शौकीन होंगे। हमारे आश्रममें गांवोंके बनिस्यत पानीकी ज्यादा छूट है और दिन भी गर्मीके हैं, अिसलिअे शामको भी आपमें से कुछ लोग नहाते होंगे। लेकिन यह अैसे लोगोंकी बात नहीं है। हमें तो यह जानना है कि दिनमें मेहनत-मजदूरी करके खूब पसीना आया है अिसलिअे शामको न नहानेसे जिनका मन बेचैन हो जाता है, अैसे हममें कितने लोग है? जिसके शरीरमें बहुत चरबी होनेसे अथवा कोअी रोग होनेसे पसीना निकलता हो, अुसकी भी हम बात नहीं करते। हमारा प्रश्न तो यह है कि पसीना बह निकलनेकी हद तक सख्त मेहनत दिनमें किसने किसने की है?

यह प्रश्न यदि गावमें जाकर किसानों और हलवाहोंको अिकट्ठा करके पूछें, तो अुनमें से हरअेक आदमी अपना हाथ अूचा करेगा। वे सवेरे भले न नहाते हों, परन्तु शामको तो अचूक रूपसे नहाते हैं। अिसके बिना अुन्हें खाना भी नहीं भाता और नींद भी नहीं आती — अितने वे पसीनेसे तरबतर हो जाते हैं। परन्तु आश्रममें हम सब अीमानदारीसे अिसका अुत्तर देंगे, तो मैं नहीं मानता कि बहुत हाथ अुठ सकेंगे। मैं समझता हूं कि जिस हद तक हमारा आश्रम-जीवन अभी कच्चा है। अिस आधार पर हम रोज अिस बातका नाप निकाल सकते हैं कि दरिद्रनारायणके जीवनमें और अुनके सेवकोंके जीवनमें अभी कितना बड़ा फर्क है। दरिद्रनारायण सख्त मेहनतमें दिन बिताते हैं, अिसलिअे सांझ पड़ने पर पसीना पसीना हो जाते हैं, जब कि हम अुनके सेवक तुलनामें हलके काम करके दिन बिताते हैं, ज्यादातर बैठकर किये जानेवाले काम करते हैं, अिसलिअे पसीनेका अनुभव बहुत कम कर पाते हैं।

हाथ अुठवाये बिना भी स्वामी-सेवकके बीचके अिस भेदको नापनेके और बहुतसे चिह्न हैं। स्वामी अर्थात् ग्रामवासियोंके हाथोंकी चमड़ी कड़े परिश्रमसे कड़ी पड़ जाती है, हम सेवकोंके हाथ तुलनामें कोमल होते हैं। स्वामियोंके कपड़े घिसते हैं, पसीने और मिट्टीके मिश्रणसे मैले होते हैं। सेवकोंके कपड़ों पर सारा दिन बीत जाने पर भी घिसाअी या मैलेपनके चिह्न दिखाअी नहीं देते। स्वामी रूखी रोटी खाने पर भी अुसके सब तत्त्व हजम कर सकनेके कारण सुदृढ़ शरीरवाले होते हैं, सेवक आहारशास्त्रियोंकी सलाहके अनुसार खुराकमें जरूरी तत्त्वोंकी बहुत सावधानी रखते हुअे भी शरीरसे ढीले-ढाले रहते हैं। स्वामीको सोते ही मीठी नींद आ जाती है, सेवकोंको देर तक दिया जला कर लेटे लेटे पढ़ते रहना पड़ता है। यह वर्णन हम आश्रमवासी सेवकोंको जिस हद तक लागू होता है, अुस हद तक हमारा जीवन अधूरा है, आदर्शसे नीचा है, यही समझना चाहिये।

हम आश्रममें २४ घंटेका हिसाब तो बराबर पेश कर सकते हैं। अुसमें खा
और बेकार माना जाय अैसा अेक भी घंटा न बितानेकी हम सावधानी रखते हैं
नींदकी गोदमें आराम करनेके समयको छोड़ बाकी सारे समय हम किसी न किस
कार्यक्रममें लगे ही रहते हैं। यहां तक तो ठीक है। परन्तु आज हमें यह विचार करना
है कि २४ घंटेमें से पसीना लानेवाली मेहनतके लिअे हम कितना समय देते हैं?

यों तो मैं अपना समय प्रार्थनामें, कक्षाओंको पढ़ानेमें, कातनेमें, पढ़ने-लिखनेमें,
पत्रव्यवहार करनेमें, कार्यकर्ता-सम्मेलनोंमें भाग लेनेमें और शामको दो घड़ी घूमनेमें
बिताता हूं और अपने अेक अेक मिनटका अुपयोग करता हूं। विद्यार्थियोंके कार्यक्रममें
कहीं-कहीं फर्क होता है। वे कताअी, बुनाअी वगैरा अुद्योग सीखनेमें अधिक समय
देते हैं। अिस हद तक मेरे जीवनसे अुनका जीवन कुछ कम दोषवाला माना जायगा।
हम सब पाखाना-सफाअी, स्वयंपाक और गोशाला वगैराके कुछ भारी कामोंमें जितना
समय बिताते हैं, वह हमारे दिनके कामका सबसे अुत्तम भाग है। परन्तु यह भाग तुलनामें
छोटा ही है। संतोष मानने लायक तो बिलकुल नहीं। ये काम कुछ भारी तो हैं,
परन्तु अिन्हें पसीना लानेवाले कामोंकी श्रेणीमें शायद नहीं रखा जा सकता।

तब अैसा सख्त मेहनतका काम कौनसा गिना जायगा, जिसके न रहनेसे हमारे
ीवनमें कुछ कमी रह जाती है? अैसे काम बहुत होंगे, परन्तु खेती-बाड़ीके जैसा अेक
ी नहीं है। जमीन खोदना, निराअी करना, फसलको पानी देना, फसल काटना, हल
ाना वगैरा काम करते हैं, तब हमें लगता है कि आज हमने कुछ काम किया।
म होने पर हमारे हाथ-पैरोंको मालूम होता है कि आज हम बेकार नहीं रहे हैं।
से सास लेने-निकालनेके कारण ताजी हवा खूब मिलनेसे अैसा अनुभव होता है
फेफड़े भी तृप्त हो गये हैं। मस्तीमें आकर कर्तव्य-पालन करनेका मौका मिलनेसे
को भी संतोष होता है। चमड़ी भी मानो मक्खन जैसी कोमल हो जाती है।
की बूंदोंसे अुसका प्रत्येक छिद्र धुलकर साफ और खुला हो जाता है।
अिसके सिवा, खेतीके कामोंमें अेक और खूबी है, जो दूसरे मेहनतके कामोंमें
ाअी जाती। यों तो घरकी कोठरीमें बैठकर पीसने या चूल्हेके पास लम्बे समय
कर स्वयपाक करनेके काम भारी और पसीना लानेवाले हैं। अथवा कोअी
में मजदूरी पर जाता हो और गाठें अुठानेका काम करता हो तो वह भी
र पसीना लानेवाला काम है। परन्तु अिनमें से अेक भी खेतीकी बराबरी
सकता।

हम 'कठोर परिश्रम' कहते हैं अुसके लक्षणोंमें अेक लक्षण पसीना
। और अुतना ही महत्त्वका दूसरा लक्षण यह है कि हममें सर्दी, धूप,
र हवा वगैरा बरदाश्त करनेकी शक्ति आनी चाहिये। अिसके लिअे खेतोंमें
है। खेतीके काम करते हुअे किसी समय दोपहरकी कड़ी धूप सिर
ड़ेगी, कभी दांत किटकिटानेवाली ठंड सहनी पड़ेगी, तो कभी बरसने
ोसनेका काम करना होगा। अिस प्रकार ऋतुओंकी प्रसन्नता या रोषको

आनन्दके साथ सहन करनेकी और कैसी भी मुसीबतमें काम न छोड़नेकी शक्ति शरीर-यंत्रमें खेतीके कामोंसे ही आ सकती है।

ये दो शक्तियां — पसीना बहानेवाली मेहनतकी और सर्दी-गर्मीको समान मानकर सहन करनेकी — अपने भीतर न पैदा करें, तो हमारे जीवनमें बहुतसी कमियां रह जाती हैं। हम अनेक अुपयोगी गुणोंका विकास नहीं कर सकते।

प्रथम तो हमारे मनका झुकाव अपने निर्वाहके लिअे कोअी आसान और बैठ कर किया जानेवाला धन्धा पसन्द करनेकी तरफ ही रहता है। आजकलके स्कूल-कॉलेजोंमें पढ़े हुअे लोग कारकुनी धन्धे पसन्द करते हैं और मेहनतसे सदा दूर रहते हैं। किसानका लड़का घरकी खेती-बाड़ी होगी तो भी अूपरकी दोनों शक्तियां गंवा देनेके कारण कहीं न कहीं नौकरी ही ढूंढने निकलता है। वह खेतीका स्वच्छ, खुली हवाका और स्वास्थ्यप्रद जीवन छोड़कर शहरकी किसी अंधेरी कोठरीमें रहने जाना पसन्द करता है। खेतीका स्वतन्त्र धन्धा छोड़कर वह पैसेवाले लोगोंका या अूपरके अफसरोंका हुक्म बजानेवाला और स्वाभिमान खोकर अुनकी डांट सुननेवाला बन जाता है। पेट भर मिलनेवाला सादा पौष्टिक भोजन छोड़ कर और अुसे पचा सकनेवाला नीरोग शरीर खोकर वह बीमारी, गंदी हवा और मिलावटवाली खुराकका जीवन पसंद करता है, और खुराकके बदलेमें पोशाकका ठाट, नाटक-सिनेमा वगैरा मौजशौक बढ़ाकर अपनेको सुखी मानता है। अिस प्रकार सच्चा सुख छोड़कर वह किसलिअे दुःखकी तरफ खिंचता है? अिसीलिअे कि पसीना बहाने और सर्दी-गर्मी सहन करनेकी आदत अुसने छोड दी और अुससे डर कर वह भाग गया।

सख्त मजदूरीसे अूकतानेवाले मनुष्यके मनके विचार भी बिगड़ जाते हैं। वह मेहनत-मजदूरीको और अुसे करनेवालेको नीचा मानने लगता है, और काम न करनेवालेको तथा कपड़े पर दाग न पड़ने देनेवालेको अूंचा समझता है। गांवोंके किसानों और मजदूरोंको, जिनमें वह स्वयं पैदा हुआ है, नीचा मानता है; वह अपने मां-बापसे, सगे-सम्बन्धियोंसे, अपने सादे घरसे और गांवसे शरमाता है और पैसा कमाकर फुरसतके जीवनका सुख प्राप्त करनेके लिअे हाथ-पैर मारने लगता है। पैसा किसीको प्रामाणिक धन्धा करनेसे कभी मिला है? अैसा सोचकर वह छल-कपट और झूठ अित्यादिका आश्रय लेकर अपने जीवनको गन्दा बना देता है। देखिये तो सही! मेहनतकी अरुचि मनुष्यको कितना बदल डालती है? अुसके जीवनमें कितनी तरहसे जहर मिला देती है? अिस रास्ते लग जानेवालेको सेवाका विचार तो सूझ ही कैसे सकता है? वह दरिद्रनारायणका सेवक बननेके लिअे दरिद्रता अपनानेकी हिम्मत कहांसे लाये? देशकी आजादीके खातिर कुरबान होनेमें भी अुसे रस कैसे आये?

अिसीलिअे हम आश्रममें अिस प्रकारके जीवनका विकास करना चाहते हैं, जिसमें हमें मेहनत-मजदूरी कभी कड़वी न लगे, बल्कि अुसमें अलौकिक मिठास मालूम हो; हमें पसीना बहाना नीचा न लगे, परन्तु अूंचा अुठानेवाला और पावन बनानेवाला लगे। पसीने-कामके बिना हमारी सेवक बननेकी यह शिक्षा पूरी कैसे हो सकती है?

मेहनतकी आदत न होनेके कारण हमारी हड्डियां अुस समय दुखने लगें, हमारे मनको धीरे-धीरे ढीला कर दें और ढीला मन हमें कामसे बचनेके और सत्याग्रहीको शोभा न देनेवाले मार्ग सुझाने लगे? या तो हम कर्मचारियोंके सामने दीन मुंह बनाकर कायरता घोषित करेंगे, मौका मिल जाय तो हमारा काम दूसरेसे करानेका प्रयत्न करेंगे या अैसी तरकीब निकालेंगे जिससे जमादार हम पर दया करके हमारे बारेमें झूठी बातें लिख दे। और नीचे गिर रहा मन कहां जाकर रुकेगा, यह कौन कह सकता है? कदाचित् जेल हमें खानेको दौड़ेगी। ग्रामसेवा करते हुअे जेलका खतरा अुठाना पड़ता है, अैसा सोचकर शायद हम समूची ग्रामसेवाको ही तिलांजलि दे देंगे और फिर तो धीरे-धीरे हमारा करघा भी अिधर-अुधर हो जायगा, समय पाकर चरखा भी छत पर पहुंच जायगा और शायद शरीर परसे खादी भी अुतर जायगी। पावनकारी पसीनेकी आदत न रखनेमें यह कितना भयंकर खतरा है?

दूसरी कल्पना कीजिये। खड्डेमें पैर रखकर हम बुनते रहते हैं अथवा पल्थी मारकर कातते रहते हैं और पसीना बहानेकी आदत छोड़ बैठे हैं। लम्बे समय तक अैसा जीवन बितायें तो हमारा शरीर नाजुक और दुर्बल बन जाता है, यह निरी कल्पनाकी ही बात नहीं है। भलेचंगे रहें तो ही आश्चर्यकी बात माननी चाहिये। हम अनेक मोहोंको और आकर्षणोंको छोड़कर, मन-मस्तिष्कियोंकी बात न मानकर मुश्किलसे सेवाकी तरफ झुकते हैं। अिसमें अगर शरीर तन्दुरुस्त न रहे तो बीमारीसे दुर्बल हुअे मनको देहाती जीवन असह्य प्रतीत होने लगेगा। गावमें डॉक्टरों और अस्पतालोंकी सुविधा नहीं होती। बीमार आदमीको खर्च भी ज्यादा करना पड़ता है। यह देहाती जीवनमें हो नहीं सकता। अिसीमें से अेक दिन मनकी दुर्बलताके क्षणोंमें हम गावको आखिरी सलाम करके और चरखा बगलमें दबाकर चल दें, यह क्या बहुत सम्भव नहीं है? क्या आपको अिसमें अतिशयोक्ति लगती है?

और मनकी गति तो बहुत टेढ़ी होती है। दुर्बल मन हमारी सारी श्रद्धाको पलट सकता है, हमारे सारे ध्येयमें परिवर्तन कर सकता है। कठोर परिश्रमका स्वाद समझना हमने न सीखा हो, तो हमारा मन वैसे परिश्रमको दुःख मानने लगता है, अुसमें किसी भी तरह छूटनेको ही मानव-जीवनका ध्येय मानने लगता है। हमारी अैसी मान्यता बनने लगती है कि यंत्र ही मनुष्यको दुःखसे बचा सकते हैं। चरखा और करघा हमें धीमे और निकम्मे मालूम होने लगते हैं और राक्षसी कारखानोंका मोह जाग्रत हो जाता है। अिस तरह हमारी यह श्रद्धा टूट जाती है कि जिस मार्ग पर पिछले २०० वर्षसे चलकर मनुष्य महाविपत्तिमें घिर गया है, अुससे दुनियाको छुड़ानेके लिअे चरखे और ग्रामसेवाका अवतार हुआ है। पसीनेका स्वाद लेने लायक रुचि अपने भीतर न बढ़ानेसे अिस प्रकार हमारी आधारभूत श्रद्धा ही नष्ट हो जाती है। यह कितना भयंकर खतरा है!

यह न मानिये कि ये सब कोरी कल्पनाअें ही हैं। लोगोंके जीवनमें सचमुच अैसा हुआ है। और अनेक लोग, जो हमारे जैसे अुत्साहसे सेवाके मार्गमें लगे थे,

अन्तमें निराश होकर पीछे हट गये हैं। असलिअे आश्रमकी शिक्षामें यदि
सख्त मेहनत और सर्दी-गर्मी सहनेकी शक्ति अपने भीतर पैदा नहीं करेंगे, अुस
जो आनन्द है अुसे लूटने लायक मजबूत तन-मनवाले नहीं बनेंगे, तो हमारी शिक्षा
बिना सिरके धड जैसी हो जायगी। हम केवल पढ़ने-लिखनेमें ही तो नही लगे
रहते, हम तो अुद्योग करते हैं और वे कताअी-बुनाअी जैसे राष्ट्रीय अुद्योग हैं — अिस
भ्रममें हम पड़े रहें और पसीना बहानेवाली मेहनत न करें, तो यह हमारे लिअे
बड़ी खतरनाक बात होगी।

जो लोग समाजमें अनेक अुपयोगी धंधे करते हैं, अुन्हें भी अिस बात पर ध्य
देना चाहिये। हम देखते हैं कि दर्जियों और मोचियोंकी रीढ़की हड्डी टेढ़ी हो जा
है और जुलाहोंके हाथ-पैरोंके पट्ठे सुडौल नही बन पाते। दूधका धंधा करनेवालों
और हलवाअी लोगोंकी तोद बढ़ जाती है, बढअियोंकी छाती बेडौल हो जाती है और
सुनारोंकी आंखें कौड़ी जैसी होनेके अलावा अुनके शरीर झुक जाते हैं।

अब यों देखें तो ये सब कारीगर ग्राम-जीवनमें अुपयोगी काम करनेवाले हैं। हम
यह आक्षेप नही कर सकते कि वे आलसी या निकम्मे बैठे रहते हैं। परन्तु अुनके
कामोंमें अुन्हें पसीने और सर्दी-गर्मीकी सहनशक्ति रूपी दो रसायनोंका लाभ न
मिलता। अुन्हे अिस कमीका भान नही होता, परन्तु अिससे क्या शरीर पर असर प
बिना रहता है? अिन लोगोंको भी अपने धन्धोंके साथ हमारी तरह खेती जैसे भारी
मेहनतके कामोंका मेल बैठाना चाहिये।

गावके धन्धोंमें कुछ धन्धे जरूर अैसे हैं जिनमें ये दो रसायन अपने-आप मिल
जाते हैं। कुम्हारका धन्धा अैसा ही है। अुसका काम मिट्टी अुठाने और गूंधनेका होता
। अिसलिअे अुसमें पसीना निकलने जितनी मेहनत होती है। अिस सिलसिलेमें
गलमें घूमना पड़ता है। घर पर चाक चलाते समय अुसका फैलाव बहुत होनेके क
विशाल जगहमें काम करनेका लाभ मिलता है। अैसा ही दूसरा धन्धा ग्वालों अ
वाहोंका है। ढोर चरानेके लिअे अुन्हें जंगलमें दूर दूर तक पैदल जाना और धु
में रहना पड़ता है। रहनेका स्थान अुन्हें भी विशाल चाहिये। काम भी अुनर
मेहनतका है। अुन्हें तो दूध-दहीका लाभ भी अधिक मिलता है। कुम्हारों और
होंके शरीर पर अिन रसायनोंका सुन्दर प्रभाव स्पष्ट दिखाअी देता है। वे खेतीके
न करें तो चल सकता है। परन्तु दूसरे धन्धेवालोंको तो खेतीका काम करना ही
।

परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि सबको खेतीका काम पानेमें कठिनाअिया
। हमारे आश्रममें यह अेक बड़ी अनुकूलता है कि हमारे पास काफी जमीन
सकता है कि जैसे सब आश्रमों और देहातोंके सब धंधेदारोंके पास अपनी
हो। अैसी परिस्थितिमें पड़ोसियों या जान-पहचानवालोंकी जमीन पर
म करना अुत्तम मार्ग है।

परन्तु संभव है, अैसा करनेमें समय काफी देना पड़े और सब धंधेदारोंको अिस तरह समय देनेकी सुविधा न हो। हमने आश्रममें विद्यार्थी वर्गके लिअे खेती-बाड़ीका अुद्योग पाठ्यक्रममें ही रख दिया है, अिसलिअे कोअी कठिनाअी नहीं रही। परन्तु जो खादी-कार्यालय चलाते हैं अथवा जो धंधेके लिअे बुनाअी करते हैं, वे रोज खेतीमें समय नहीं दे सकते। मैं खुद तो मानता हूं कि खेतीके रसायनोंके खातिर अुन्हें भी खेती-कामके लिअे समय निकालना ही चाहिये। आग्रह रखें तो वे जरूर समय निकाल सकते हैं। अैसा करनेसे अुनके धंधेका काम कम नहीं होता, बल्कि अुत्साह, अुमंग, चपलता और सूझबूझ बढ़नेसे अधिक होता है और अधिक दिलचस्पीसे होता है।

फिर भी अुनके जैसोंके लिअे खेती-काम न मिल सकनेकी कमी पूरी करनेका दूसरा अुपाय व्यायाम है। दंड, बैठक, मुगदर वगैरा कसरत करने और खुली हवामें घूमने तथा दौड़नेसे कुछ हद तक खेती-कामकी कमी पूरी की जा सकती है। पाठशालाओंमें पढ़नेवाले विद्यार्थी, शिक्षक और बैठा धंधा करनेवाले दूसरे लोगोंमें कुछ सावधान लोग अैसे व्यायाम करके अपने शरीर गठीले, सुडौल और मजबूत रख सकते हैं।

अिसमें शक नहीं कि व्यायामसे थोड़े समयमें आवश्यक परिश्रम हो जाता है और घर बैठे खुले आंगनमें या खुली छत पर यह परिश्रम हो सकता है। समझके साथ यह परिश्रम किया जाय और अुसकी योजना अिस ढंगसे बनाअी जाय कि अपने-अपने धंधेमें जिन अंगोंके हिस्से श्रमका काम न आता हो अुन्हें श्रम मिल जाय, तो शरीरकी दृष्टिसे यह व्यायाम हमारी जरूरत पूरी कर सकता है।

परन्तु खेती करनेमें जीवनकी दृष्टिसे अत्यन्त कीमती जो दूसरे लाभ मिलते हैं, वे नीरस व्यायाममें कैसे मिल सकते हैं?

खेती करनेसे हमें व्यायामके आनन्दके साथ कुछ न कुछ अुपजाअू काम करनेका सन्तोष मिलता है, मनमें प्रामाणिक परिश्रम करके रोटी कमानेका अुल्लास पैदा होता है। व्यायाममें कसरत होती है, परन्तु यह अुल्लास कहां मिल सकता है?

दूसरे, खेतमें काम करते जानेसे हमारे साथ काम करनेवाले अन्य किसान भाअी-बहनोंके साथ हम अेकता अनुभव करते हैं, अुनके भीतरके अनेक सुन्दर गुणोंको हम पहचानने लगते हैं और हम अिस भ्रमसे बाहर निकल आते हैं कि वे अपढ़ होनेके कारण हर प्रकारसे जड़ हैं। यह अनुभव घर रहकर कसरत करनेवालेको कैसे मिल सकता है? वह शरीरसे मजबूत होगा, परन्तु लोगोंसे तो दूर ही रहेगा।

तीसरे, व्यायामसे शरीर मजबूत बनानेका ध्येय रखकर कसरत करनेवालेके दिलसे यह खयाल शायद ही दूर होता है कि मेहनतका काम नीचा है। वह दंड-बैठक कितनी ही करे, परन्तु मट्टी या घास अुठाकर चलनेका मौका आयेगा तो वह मजदूरकी तलाश करने दौड़ेगा। अुसके शरीरमें ताकत न हो सो बात नहीं, परन्तु अैसा बुनेका वह अपनी शानके खिलाफ समझता है। खेती-बाड़ीके साथ मन

मेहनती लोगोंके साथ काम करनेसे अुनका स्वभाव हममें आ जानेकी पूरी संभावना रहती है।

अिन सब परिणामोंको देखते हुअे कहां खेती-काम और कहां कृत्रिम व्यायाम? सचमुच अिन दोनोंकी तुलना ही नहीं हो सकती। अेकमें केवल श्रम और शरीरका निर्माण है, जब कि दूसरेमें जीवनका सर्वांगीण निर्माण है।

अितने पर भी व्यायामकी निन्दा करनेका हमारा आशय नहीं है। आप जानते हैं कि हमारे कार्यक्रममें हमने खेती-बाड़ी और दूसरे भारी कामोंको पूरा स्थान दिया है। फिर भी हम खास प्रकारका व्यायाम भी नियमित रूपसे करते हैं। हम मानते हैं कि हमारी तरह किसानोंको भी कुछ न कुछ व्यायाम करना चाहिये। अुनके शरीर अुनके धंधेके परिणाम-स्वरूप मजबूत तो होते हैं, परन्तु अक्सर अुनमें बड़ी खामियां रह जाती हैं। अुदाहरणार्थ, मजबूत किसानोंको सीधे खड़े रहना और बैठना, बराबर कदम रखते हुअे लड़खड़ाये बिना चलना या दौड़ना, सफाअीसे कूदना और चपलतासे चलना-फिरना नहीं आता। कवायदकी तालीम न मिलनेसे ही अुनमें यह कमी रह जाती है। नियमित गहरी सांस लेना और लंबे समय तक सांस रोकना भी अुनसे नहीं बनता। प्राणायामकी शिक्षा पाये बिना फेफड़े स्वस्थ और बलवान कैसे बन सकते हैं?

अब आप समझ जायेंगे कि हमारे कातने बुननेके राष्ट्रीय अुद्योग करने पर भी खेती-बाड़ीके पवित्र रसायनोंके बिना हमारा जीवन त्रुटिपूर्ण रह जाता है, अैसा ह क्यों मानते हैं। हम व्यायाम तो करते हैं, परन्तु वह खेतीके कामका स्थान नहीं ले सकता। व्यायाम तो हम अिसलिअे करते हैं कि खेतीके काममें जो महत्त्वकी तालीम नहीं मिल पाती, अुसकी पूर्ति व्यायामसे हो जाय। अपने अपने धंधेसे म्न्वित अुद्योग, खेती और कसरत-कवायद — अिन तीनोंका सुमेल साधें तभी क्षा पूरी होगी।

आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा

पांचवां विभाग

खादी-धर्म

प्रवचन २५

अनिवार्य खादीका नियम

आश्रममें नये आनेवाले अितना तो जानते ही है कि यहां खादीके सिवा [illegible] कपडे काममें लेना शोभा नही देता। अिसलिअे वे आश्रममें प्रवेश करनेसे पहले [illegible] कपड़े बनवा लेनेकी चिन्ता रखते है। आपने भी यह चिन्ता रखी [illegible] अिसके लिअे मैं आप सबका आभार मानता हू। सचमुच हमारे लिअे यह बात [illegible] जैसी ही है।

खादीके कपडे पहननेवालोंको ही आश्रममें भरती करनेका [illegible] नियम [illegible] है, परन्तु क्या आप समझते है कि कोअी खादीके कपडे पहने बिना [illegible] आ जाय तो हम अुसके लिअे आश्रमके द्वार बद कर देगे? [illegible] आश्रममें आनेकी भावना जिसके मनमे पैदा हुअी अुस [illegible] होगी? हृदयमें भावना अुत्पन्न हुअी अुसी क्षण अुसने सूक्ष्म [illegible] ली न? स्थूल खादी जुटानेमें अुसे कुछ न कुछ अड़चन हुअी होगी। [illegible] पैसा खर्च करके खादी खरीद सकनेकी अुसकी स्थिति नहीं [illegible] बापकी नाराजी मोल लेकर आश्रममें आ पहुंचा होगा [illegible] कर सका होगा।

कभी-कभी अैसे पराक्रमी वीर भी हमारे यहां जरूर आ [illegible] आनेका विचार आते ही यहां नहीं दौड आते परन्तु [illegible] देने लायक जीवन जीनेकी पूर्व तैयारी करने लगते हैं। [illegible] आदत डालने लगते हैं। कोअी कुसगके कारण व्यसनमें [illegible] देते है। कोअी परिश्रमी जीवनकी आदत डालने लगते हैं। [illegible] घरमें ही अपनी समझके अनुसार आश्रम बना लेते हैं। अैसे [illegible] ही दूधमें दूधकी तरह घुलमिल जाते है। [illegible] परन्तु आश्रमको सुशोभित भी करते हैं।

परन्तु अैसे विरले लोग तो कभी कभी ही आते है। [illegible] पहनकर कौन आ सकता है? या तो वे जिनके माता-पिता [illegible] वे जिनके पास खादी खरीदनेके लिअे पैसेकी गुंजािअश है।

अब आप देखते हैं कि हमारा नियम खादी पहननेवालोंके [illegible] परन्तु यह नियम अैसा नहीं है कि खादीधारी मा-बापके लड़के [illegible] अथवा खादी खरीदनेके लिअे जिनके पास पैसे हो [illegible] फिर भी यदि आप सब पहलेसे खादीकी व्यवस्था करके यहां आये हैं [illegible] बधाअीके पात्र मानना ही चाहिये।

आप सब मातृभूमिके प्रति भक्ति-भावना रखते हैं और असी श्रद्धा रखते हैं आश्रमकी सब बातें अच्छी ही होंगी। परन्तु आजकल अैसी हवा चल रही है कि बहु लोग अनिवार्य नियमोंका नाम सुनकर चौंक अुठते हैं। जो संस्थायें अपने यहां रह वालों पर तरह तरहके नियम लादती हैं, वे अुन्हें जहरकी तरह लगती हैं। लेवि हमारे यहां तो पग-पग पर नियमोंका साम्राज्य है! अुठें तो नियमसे और बैठें नियमसे। काम करें तो भी नियमसे और सोयें तो भी नियमसे। खाना-पीना नियमानुसार और कपड़े पहनना भी नियमानुसार! यह जुल्म कैसे सहन हो?

अिस प्रकार नियमों और कर्तव्योंका नाम सुनकर जो चौंकते हैं, अुन्हें हंसी अुड़ा देनेकी मेरी बहुत अिच्छा नहीं होती। मेरे मनमें तो अुनके प्रति कुछ सहा भूति भी रहती है। हमें अिस देशमें विदेशी राज्यके नियमों और कानूनोंके साम सिर झुकाना कितना कठिन मालूम होता है? वे हमारे जीवनका गला घोंट रहे और अुनसे छूटनेके लिअे हम वर्षोंसे तड़प रहे हैं। कोअी आदमी हमसे कोअी ची अनिवार्य रूपमें कराये, हमारी अिच्छा न होने पर भी धमकाकर या हमारी कमजोरीव लाभ अुठाकर कराये, तो अुससे हमारे दिलको कड़ी चोट लगनी चाहिये। और अच्छ बात होने पर भी वह हमारी अिच्छाके विरुद्ध हम पर लादी जाय, तो हमें अुसव कड़ा विरोध करना चाहिये। 'वन्दे मातरम्' मंत्र हमें कितना प्रिय है? फिर भी कोअ अिस तरह मजबूर करने आये कि 'वन्दे मातरम्' बोलो, नहीं तो तुम्हें कैदमें डा दिया जायगा, तो स्वाभिमानी मनुष्यके नाते हम अिस मंत्रको बोलनेसे भी अिनका कर देंगे। अीश्वरका भजन गाना हमें प्रिय है, परन्तु यदि कोअी अिस प्रकार विवश करने आये कि भजन गाओ, नहीं तो तुम्हारा सिर अुड़ा दिया जायगा, तो सच्चे भक्तकी हैसियतसे हमें वह हुक्म माननेसे अिनकार ही करना चाहिये। अिसलिअे खादीके वस्त्र हमें प्रिय हैं, फिर भी कोअी अिस तरह लाचार करने आये कि खादी पहनो, नहीं तो तुम्हें अंगूठे पकड़नेकी सजा दी जायगी, तो अुसकी दी हुअी खादीको हमें छूना भी नहीं चाहिये।

परंतु नियम नियममें अंतर है। नियमका नाम सुनकर चौंकना जरा भी अुचित नहीं है। दूसरा अपने नियम हमारे सिर पर जबरन् लादे और हम अपनी सुविधाके लिअे अपनी शिक्षाके लिअे, खुद नियम बना लें, ये दोनों बातें अेकसी कैसे कही जायगी? अत्याचारी राज्य अपने कानून हमसे डरा-धमकाकर मनवाये और हमारी अपनी संस्था प्रगतिके अुद्देश्यसे हमारे लिअे कानून बनाये, ये दोनों समान कैसे माने जायेंगे? अत्याचारी तो हमारा अपमान करनेके लिअे हमसे कानून मनवाता है, जब कि अपनी संस्थाका हेतु तो यही होता है कि हमारा कल्याण हो।

खादीके नियमके प्रति आपका अिस प्रकार प्रेम अुत्पन्न होना आसान है। परन्तु क्या हमारे दूसरे छोटे-बड़े नियमोंके लिअे भी आपके मनमें अैसा ही प्रेम पैदा होगा? खादीके पीछे तो अेक अैसी पवित्र भावना है, जो हृदयको अच्छी लगती है। सभी नियमोंके पीछे अैसी भावना नहीं होती। खादी पहननेका नियम तो आप तुरंत स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु अुसे अेक खास ढंगसे ही सब आश्रमवासी पहनें, यह नियम आपको कैसा लगता है? मान लीजिये आश्रमका अैसा नियम हो कि हमारे यहां सब सफेद खादीके ही कपड़े पहनें। आपमें से किसीको रंगीन और तरह तरहके डिजाअिनोंवाली खादी पहननेकी अिच्छा होगी। आपको टोपी, धोती, चड्डी या पायजामेका अिच्छानुसार फैशन करना अच्छा लगता होगा। आपका यह मोह यदि बहुत प्रबल होगा तो आपको अूपरका नियम बहुत ही कड़ा लगेगा। परन्तु अैसे मौके पर अेक और भावनाको समझकर हृदयमें अंकित करनेकी मैं सूचना करता हूं। क्या आपको यह भावना प्रिय नहीं कि हमारा आश्रम अेकदिलवाली संस्था होना चाहिये? हम सब अपनी-अपनी पसन्दकी पोशाक पहने, अिसके बजाय आश्रम द्वारा मान्य किये गये ढंगकी ही बनायें तो अुसका असर कैसा होगा, अिस पर विचार कीजिये। क्या हमें अैसा नहीं लगेगा कि हम अलग अलग विचारके और मनमाने ढंगसे चलनेवाले लोगोंका समूह नहीं हैं, बल्कि अनेक हाथ-पैरवाले अेक आश्रम-पुरुष हैं! सचमुच यह विचार हमारे हृदयमें बड़े आनंद और बलका प्रेरक सिद्ध हो सकता है।

अलबत्ता, अैसा तभी प्रतीत होगा जब आश्रमके लिअे हमारे हृदयमें गहरी भावना हो; अुसकी प्रत्येक वस्तु पर, अुसकी भूमि, अुसके पेड़-पत्ते, अुसके मनुष्यों सब पर हमें प्रेम हो; अुसके कार्यक्रमों, अुसकी शिक्षा, अुसके नियमों, अुसके गणवेश सबके प्रति हमें बड़ी ममता हो।

आश्रमके अनिवार्य नियमोंको प्रिय बना लेनेमें अेक और विचार भी हमें सहायक हो सकता है। आप आश्रममें अभी नये हैं, अिसलिअे आपके सामने तो जो भी नियम आते हैं सब तैयार पके-पकाये ही आते हैं। परन्तु अैसा समझिये कि आपके हिस्सेमें नियम तैयार करनेका काम आया है। आश्रमकी तालीम अभी आपके रुधिरमें मिल गअी है यह दावा तो आप नहीं कर सकते, फिर भी मैं विश्वासपूर्वक मानता हूं कि आप आश्रमके लिअे पोषक नियम ही बनायेंगे। आपको जल्दी अुठना अभी कठिन लगता होगा, फिर भी आप अुठनेका नियम बनाने लगेंगे तो ब्राह्म-मुहूर्तमें ही अुठनेका नियम बनायेंगे। खाने-पीनेमें आपको तीखे चरपरे पदार्थों और मिठाअियोंका शौक होगा, फिर भी आप नियम बनाने बैठेंगे तो सादे सात्त्विक भोजनका ही नियम बनायेंगे, कपड़ोंके विषयमें भी आप हमारी तरह खादीके सादे और सफेद कपड़ोंका ही नियम बनायेंगे।

अैसा क्यों? क्या आपने अपने मौजशौक पर अेकाअेक विजय पा ली है? नहीं, यह बात तो नहीं है। आपको व्यक्तिगत जीवन ही बिताना हो तब तो आप अपनी पुरानी आदतोंके अनुसार ही चलेंगे। परन्तु जब आश्रमके लिअे नियम

राष्ट्रीय गणवेश

खादीके कपड़े पहननेमें हमें अेक प्रकारका अभिमान होता है। अिस विचारसे हमारे दिलमें अुल्लास पैदा होता है कि अुसे पहनकर हम आश्रमके अेक सुन्दर नियमका पालन करते हैं। हम सब आश्रमवासी अेकसा पवित्र श्वेत खादीका गणवेश पहनते हैं। हमें प्रतिक्षण अिस बातका स्मरण बना रहता है कि हम सब अलग अलग शरीरोंमें रहते हुअे भी अेक ही आश्रमके अंग हैं; हमारे हृदय अेक हैं, हमारे विचार अेक हैं, हमारी शिक्षा अेक है, हमारा ध्येय अेक है। और ये सब भावनाअें हमें देनेवाला हमारा आश्रम है।

हमारे आश्रमने यही गणवेश क्यों चुना? क्योंकि वह हमारी मातृभूमिका भी गणवेश है। अिस कारणसे हमारा खादीका अभिमान कहीं ज्यादा बढ़ जाता है। हमारे देशका यह गणवेश कितना सुन्दर है? हमारे देशके स्वभावमें वह कैसा अेकजीव होकर मिल जाता है? हमारे राष्ट्रीय आदर्शों और हमारी राष्ट्रीय भावनाओंका अुसमें कितना अच्छा प्रतिबिम्ब पडता है? सचमुच हम अुसके गुणोंका ज्यों-ज्यों अधिक विचार करते हैं, त्यों-त्यों अुसके प्रति हमारा प्रेम, अभिमान और गौरव बढ़ता जाता है। खादीको हमारे गणवेशके रूपमें चुननेवाले हमारे नेताओंकी बुद्धि और देशभक्तिके लिअे हमें अत्यत आदर अुत्पन्न होता है।

अुसमें सबसे बड़ा गुण यह है कि हमारे दरिद्र देशमें जिस किसी मनुष्यके हृदयमें राष्ट्रभक्तिकी भावना अुत्पन्न हो, वह अपना गणवेश अपने घरमें ही प्राप्त कर सकता है। यदि अुसके लिअे खास तरहका, खास बनावटका और खास मशीनका बना हुआ कपड़ा तय किया जाता, तो अुसकी खोजमें हमें शहर-शहर और बाजार-बाजार भटकना पड़ता।

और निठल्ले बनकर, दूसरे कामकाज छोड़कर हम यों भटकें, तो भी हम सब अुसके दाम कहांसे ला सकते हैं? हमारे देशमें तो बड़ा भाग खेतिहरों और भीलों जैसे अत्यंत गरीब लोगोंका है। अुनके मनमें देशका गणवेश धारण करनेकी भावना अुत्पन्न हो तो वे क्या करें? अुनके पास पैसा नहीं, वे गरीब हैं, अिसलिअे क्या वे अपनी अिस सुन्दर शुभ भावनाको मिट जाने दें? क्या भारतमाता अुन्हींकी है, जिनके पास गणवेश खरीदनेके लिअे पैसे हैं? और अुतने पैसे जिनके पास नहीं हैं अुनकी वह माता नहीं है? मातासे पूछें तो अुसे अपनी दरिद्र सन्तान पर ही अधिक प्रीति है, अुसीके साथ अधिक सहानुभूति है। केवल अमीर लोग ही गणवेश धारण करके फिरें, जिसमें माताको कैसे संतोष होगा? वे अच्छे वस्त्र पहनें और दीन-दरिद्र लोग चिथड़ोंमें रहें, यह देखकर माताके हृदयका दुःख दुगुना बढ़ जायगा। अपने दरिद्र पुत्रोंको सुन्दर कपड़े पहने घूमते देखे तभी माताको संतोष हो सकता है।

अिस प्रकार हमारा गणवेश खादीका हो गया, जिसीलिअे दीनसे दीन और दरिद्रसे दरिद्र भी अिच्छा हो तो अुसे बना सकता है और धारण करके माताको

पर आक्रमण करना है। हम तो चाहते हैं कि सब हमें देखें, हमारे गणवेशके आर-पार पहुंचकर हमारे प्रेमको भी पहचानें और हमारी सेवा स्वीकार करें। हमारा सफेद गणवेश दुनियाको प्रेमभावसे आमंत्रण देता है और अैसी घोषणा करता है कि हम अुसके विश्वस्त सेवक हैं।

जिस प्रकार प्रत्येक दृष्टिसे खादीका शुभ्र गणवेश अुत्तम है। कलाकी दृष्टिसे वह सबसे सुन्दर है, स्वच्छताकी दृष्टिसे सबसे साफ है, दीन-दरिद्रोंकी दृष्टिसे वह सबसे सस्ता है — घरमें ही बना लिया जा सकता है, और हम जैसे सेवकोंकी दृष्टिसे वह देशसेवाका बाना है। हमारा यह सादा सफेद गणवेश हमें सदा पवित्र चरित्रकी और अीश्वरमय जीवनकी याद दिलाता है।

प्रवचन २७

सौ फी सदी स्वदेशी

हमने अपने कपड़ोंके बारेमें बहुत विचार किया, फिर भी अैसा नहीं लगता कि अभी विचार करना पूरा हो गया है। वास्तवमें अिस विषयमें हमने सदियोंसे किसी प्रकारका अच्छा विचार दिमागमें आने ही नहीं दिया। हमने विचारोंका बहिष्कार करके ही व्यवहार किया है। अिसलिअे विचार अब हमसे बदला ले रहे हैं और अुनकी बड़ी सेना आज अेकसाथ आक्रमण करके हमारे दिमाग पर अधिकार करने चली आ रही है।

कपड़ोंकी जरूरत पैदा हो तब हमें अितना संक्षिप्त विचार ही सूझता है: "जेबमें पूरे पैसे हैं?" जेबमें पैसेका जोर होगा तो फिर विचार आगे बढ़ने लगेगा: "गांवमें बजाजकी दुकान है?" अिससे आगे विचार चले तो यों चलेगा, "कपड़ा आंखोंको अच्छा लगनेवाला है? मजबूत है?"

परन्तु हमारा देश अत्यन्त दरिद्र है। अिसलिअे अधिकांश लोगोंको तो कपड़ोंके विचारको अुठते ही दबा देना पड़ता है, क्योंकि वे जेब टटोलने पर देखते हैं कि वह खाली है, और अुसका भरना अुन्हें संभव नहीं दिखाअी देता। देहाती लोगोंके शरीरों पर हम जो चिथड़े लटकते देखते हैं, अुनसे अिसके सिवा और क्या सूचित होता है? वे यही बताते हैं कि कपड़ेका विचार तो अुन्हें आया था, परन्तु पैसेके अभावमें वह विचार अुन्हें छोड़ना पड़ा। अुनका दिमाग बहुत जोर लगाये तो अितना ही विचार करेगा कि आसपास कोअी दो पैसे कर्ज देनेवाला है या नहीं। अथवा अुधार देनेवाला दुकानदार ढूंढनेकी कोशिश करेगा। अैसी स्थितिमें कपड़ा मजबूत है या नहीं, आंखोंको अच्छा लगता है या नहीं, यह सब हिसाब लगाना अुन्हें सूझ ही कैसे सकता है?

परन्तु अितने संकुचित विचार सूझना केवल सुस्त दिमागकी ही निशानी है। जिसे जिस किसी और दिशामें बुद्धि दौड़ ही न सके, यह समझकर अर्बुद्धिका चिह्न

है। हमारे यहां तो गरीब और अमीर दोनोंने बुद्धिका दिवाला ही निकाल दिया है। धनवानोंके विषयमें तो हम समझ सकते हैं कि अुन पर धनका नशा सवार रहता है, अिसलिअे चाहे जितना रुपया खर्च करके कहींसे भी अपनी पसंदका कपड़ा खरीद लानेसे अधिक विचार अुनका मद अुन्हें आने ही नहीं देता। परन्तु गरीबोंकी अबुद्धि तो जरा भी समझमें नहीं आ सकती। कपड़े फट जाने पर क्या अितना ही सूझना चाहिये कि कहीं न कहींसे कर्ज लिया जाय अथवा कहीं न कहीं अुधार देने-वाला बजाज ढूंढ़ा जाय? अिसे क्या अीश्वरकी दी हुअी बुद्धिका अुपयोग करना कहा जायगा? जिस तरह भूख लगने पर किसी आदमीको भूखकी आग बुझानेके लिअे पेट पर गीली मिट्टी बांधनेकी मति सूझना मूर्खता कहा जायगा, अुसी तरह क्या यह मति भी मूर्खतापूर्ण नहीं है? अथवा छुरी लेकर भूखका दुःख पैदा करनेवाले पेटको ही चीर डालने जैसी यह मति नहीं मानी जायगी?

हम गरीब हों, कपड़े फट जानेके कारण ठंडसे पीड़ित हों और यदि परमेश्वरने मस्तिष्कमें थोड़ी सरल सन्मति रख दी हो, तो हमें सीधा विचार यही सूझना चाहिये कि "खेतमें से कपास लाकर कात लें, बुन लें और अुसकी खादी पहन लें।"

यह विचार हमें अेकदम नहीं सूझ सकता, क्योंकि चरखे और करघेके धंधे नष्ट हो गये हैं। जहां तहां मशीनोंके कपड़ेका राज्य फैल गया है। परन्तु १०० वर्ष पहले हमारी बिलकुल अैसी दशा नहीं थी। अुस समय घर घर चरखा चलता था। लोग कातनेकी कला भूले नहीं थे। कितने ही अमीर हों तो भी लोग सूत कातनेमें नीचापन नहीं मानते थे। हमारे लोग फुरसतके वक्त थोड़ा कातनेमें बहुत परिश्रम मानने जितने नाजुक नहीं बन गये थे। अुलटे घरमें अैसे अुद्योग हाथसे न करनेको ही घमंडका — अकुलीनताका लक्षण माना जाता था।

ये सब बातें तीन-चार पीढ़ीसे ज्यादा पुरानी नहीं हैं। फिर भी हम अुन्हें बिल-कुल भूल गये हैं और कपड़े फटने पर चरखेका विचार हमें सूझता ही नहीं। किसीको सूझे तो अुसकी गिनती पागलोंमें की जाती है!

अिस तरह जब हम अबुद्धिमें फंसे हुअे हैं, तब दूसरे लोग अपनी अक्लसे पूरा पूरा काम ले रहे हैं। अिंग्लैण्डके गोरोंने यहांकी कातने-बुननेकी कारीगरीको देखकर अुसका गहरा अध्ययन किया। अिन कलाओंको अुन्होंने अपने देशमें दाखिल किया। फिर अुन लोगोंका लोभ सादी रोटी-दालसे तृप्त न हुआ, अिस कारण अुन्होंने अिन सब कलाओंको मशीनोंमें ढाला, अेंजिनकी खोज करके अुससे मशीनें चलाअीं और ढेरों कपड़ा पैदा करना शुरू किया। वे लोग पहले हमारे यहांका बना हुआ कपड़ा पहनते थे। अब अुन्होंने [illegible] करना बन्द कर दिया। शुरूमें अुनकी मशीनोंका माल अच्छा नहीं बनता था और [illegible] पड़ता था। फिर भी अुन्होंने स्वदेशाभिमानकी भावनासे अपने स्वदेशी कपड़ोंको ही [illegible] दिया, और हमारे कपड़े पर भारी जकात लगा कर अुसे स्वदेशी कपड़ेसे स्पर्धा [illegible]नेसे रोक दिया। अिस तरह करते करते माल सुधरने पर अुन लोगोंने अल्दी [illegible] के पानीको पीछे हटाकर पर्वत पर चढ़ा दिया! हिन्दुस्तानमें रुअीकी बाढ़ [illegible]

कर जाती, अुन्हें अपने देशकी मशीनोंमें कातने और बुनते और अुस कपडेको हमारे देशमें लाकर बेचनेको रखते। राक्षसी मशीनोंमें बना हुआ यह कपडा दामोंके हिसाबसे देखने पर सस्ता मालूम होने लगा। देशी माल शुरू शुरूमें अिंग्लैण्डके मालसे थोडी-बहुत स्पर्धा करता होगा, लेकिन अुसे अपनी सत्ताका डर दिखाकर कुचल देनेमें अुन्हें क्या देर लगती?

यह सब हो रहा था, तब हमने अपनी कुटेवके कारण कुछ भी विचार नहीं किया; अथवा किया तो बहुत संकुचित और अबुद्धिका ही विचार किया: "वाह, यह विलायती कपड़ा कैसा सुन्दर है? अितना सस्ता कपडा मिल जाय तो फिर कौन दिन भर चरखेके पीछे परिश्रम करे?" यों कहकर हमने चरखेको छत पर चढ़ा दिया।

पुराने संस्कारके कारण कुछ लोग शुरूमें चरखेसे चिपटे रहे: "कैसा भी हो हमारे लिअे घरका कपड़ा ही अच्छा है; चरखा बन्द कर दें तो हमारा दिन कैसे बीते? घरमें आलस रहे तो कंगाली घुस जाय।" अैसे स्वस्थ विचार थोडे दिन तक टिके। परन्तु जैसे दीवारको सील लग जाती है, वैसे ही अिन पुराने संस्कारोंको सील लग गअी। लोगोंके मन दूसरी ही तरहके हो गये। पहले घरमें अुद्योग न करना और जो चीज चाहिये अुसके पीछे बाजारमें दौड़ना नीचा माना जाता था; अब लोग अेक-दूसरेकी हंसी अुड़ाने लगे: "कैसे कजूस हो कि बाजारमें जैसे चाहिये वैसे सुन्दर विलायती कपड़े मिलते हुअे भी अभी तक घरकी स्त्रियोंसे मजदूरकी तरह चरखा कतवाते हो?"

पहले गावकी जरूरतका माल बनाना गावके कारीगरोंका हक माना जाता था। कोअी शौकीन आदमी अुन्हें छोड़कर बाहरके कारीगरोंसे काम करा लाता, बाहरवालोंसे सूत बुनवा लाता अथवा जूते सिलवा लाता, तो ये कारीगर झगडा खड़ा कर सकते थे। गावके सयाने आदमी अुनका पक्ष लेते थे और शौकीन आदमीको शरमाना पड़ता था। परन्तु विलायती मालके फंदेमें सादे और शौकीन सभी फंस गये। शौकीन लोग अुसे सुन्दर देखकर और सादे लोग सस्ता मानकर, सयाने लोग अुसे पाना आसान समझकर और नासमझ लोग देखादेखी; धनवान धनके मदमें और गरीब लोग कामके आलस्यके कारण! सही विचार किसीने भी नहीं किया। घरमें आलस्य और घमण्ड घुस रहे हैं, अिसका विचार किसीने नहीं किया। गांवके जुलाहे, कुम्हार, लुहार, रंगरेज, माची और चमार वगैराके धन्धे नष्ट हो रहे हैं और वे भूखों मर रहे हैं, अिसका भी विचार नहीं किया। यह सब अपनी आखोंके सामने होते देखकर भी किसीकी आखें नहीं खुलीं। अितना ही संकुचित और क्षुद्र विचार किया कि "वे भूखों मरे तो अिसमें हम क्या करें? हमें तो बाजारमें सस्ता विलायती माल मिल रहा है। अुसे छोड़कर अिनका महगा माल हम क्यों लें?" आंखोंके सामने गाव नष्ट हो रहे थे। अुन्हें देखकर भी जिनकी आखें नहीं खुली, अुन्हें सारे देशकी क्या दशा हो रही है, अिसका तो भान भी कैसे आता?

अिस प्रकार विलायती कपड़ेके मोहमें जब सारा देश अंधा हो रहा था, समय भी देशमें कुछ ज्ञानी पुरुष पैदा हुअे। भारतके दादा दादाभाओी नवरोजी न्यायमूर्ति रानडे जैसे लोग अूंचे हाथ करके पुकारने लगे: "विदेशी कपड़ा कितना बढ़िया और सुन्दर क्यों न हो और स्वदेशी कितना ही मोटा और भद्दा क्यों न तुम स्वदेशीको ही प्यारा मानो।" परन्तु अिस प्रकार केवल पुकार करनेसे ही स्वदेशी प्यारा नहीं लगा। परराज्य छाती पर चढ़ बैठा था। अुसने गुप्त रूपसे देश सत्त्व चूसना शुरू कर दिया था। अिसे दादा जैसे कोओी ज्ञानी ही देख सकते थे। दूस तो अुसे देवका अवतार ही मानते थे। लेकिन अुस देवने धीरे-धीरे अपना सच्चा रू प्रगट किया। अुसने महान बंग प्रान्तको भंग किया। यह देखा तब देश चौंका। अं राज्यके साथ युद्ध करनेको तैयार हुआ। नेताओंने रोषमें आकर पुकार की, "विलायती कपड़ेकी होली जलाओ। विलायती कपड़ेका बहिष्कार करो। मांचेस्टरके कारखाने अुजाड़ हुअे बिना अंग्रेज सरकार ढीली नहीं पड़ेगी।" वे रोषमें यह भी कहने लगे, "चाहिये तो जापान, जर्मनी या अमेरिकाके कपड़े पहनो, परन्तु अिन जालिम अंग्रेजोंके देशके तो हरगिज नहीं।"

परन्तु सयाने नेताओंने सोचा, "विलायती कपड़ेका बहिष्कार करनेसे ही क्या होगा? स्वदेशी माल देशमें पैदा भी होना चाहिये।" अिसलिअे देशमें अुसकी हव चली। "देशमें स्वदेशी मालके कारखाने खोलो, मिलें खोलो, काचके कारखाने खोलो, शक्करके कारखाने खोलो, कागजके कारखाने खोलो। अंग्रेज ये कारखाने खोल सकते तो हम क्यों नहीं खोल सकते?" परन्तु कारखाने खोलना कोओी बच्चोंका खेल नहीं था। अंग्रेजोंके पास अुनका अपना स्वतंत्र राज्य था। दुहने और चूसनेके लिअे तैंतीस करोड़ लोगोंवाली भारतरूपी गाय होनेके कारण धनके ढेर थे। फिर भी देशमें कहीं कहीं कारखाने खुले। तिलक महाराज जैसे नेताओंने अुन्हें खूब प्रोत्साहन दिया। लोग स्वदेशी कपड़ा, स्वदेशी शक्कर, स्वदेशी कागज वगैरा अिस्तेमाल करनेकी प्रतिज्ञायें लेने लगे। स्वदेशी कपड़ेकी मांग बहुत बढ़ गओी, लेकिन कारखाने तो अुसके अनुपातमें थोड़े ही खुल सके थे। मौका देखकर कारखानोंके मालिक दगा करने लगे। अुन्होंने स्वदेशीके अुद्धारके लिअे थोड़े ही कारखाने खोले थे? अुन्हें तो रुपया कमाना था। वे विदेशी माल पर स्वदेशीकी छाप लगाकर बेचने लगे और भोले स्वदेशी-भक्तोंको धोखा देने लगे।

अिस प्रकार बहुत वर्षों तक गड़बड़ी और धांधली चलती रही। लोग समझते थे कि हम स्वदेशी व्रतका पालन कर रहे हैं, परन्तु विदेशी पिछले दरवाजेसे अन्दर घुस रहा था।

अितनेमें महात्मा गांधी आये। अुन्होंने समझाया, "विलायती मालका बहिष्कार करने और अंग्रेजोंसे द्वेष करनेसे हमारे लोगोंकी शक्ति कैसे बढ़ेगी? विलायतके मालका बहिष्कार करके जापान और अमेरिकाका माल लेनेसे तो हम अुनके आश्रित बन जाते हैं। हमारा बल तो तभी बढ़ेगा जब जो चाहिये सो खुद बना लें। तभी हमारे देशका धन देशमें रहेगा। तभी हमारे नष्ट हुअे गृह

वे गरीब बनेंगे और बेकार दरिद्रोंके सत्तूमें चिमटी भर आटा बढ़ेगा।" गांधीजीने यह भी समझाया: "विदेशी और देशी कारखानोंमें बहुत अन्तर नहीं मानना चाहिये। विदेशी कारखानेदार अपना माल बेचकर हमारा धन चूसते हैं, तो क्या काले कारखानेदार अिससे कसर रखते हैं? और वे सब धर्मावतार बन जायेंगे असा मान लें, तो भी अुनके कारखानोंका माल अिस्तेमाल करके करोड़ों दरिद्र देशवासियोंकी स्थिति कैसे सुधरेगी? गांवोंका सारा धन तो कारखानेदारोंके घरमें बहकर अेकत्र हो रहा है। गांवोंके लोग यदि बेकार बैठे रहते हों तो वे अपने गांवोंमें ही अपनी आवश्यकताकी वस्तुअें क्यों न तैयार कर लें? और दूर दूरके शहरोंके कारखानोंके पास रुपया खर्च करके वे चीजें लेने क्यों जायं?"

हमारी मति अिस हद तक मारी गयी थी कि अितनी सीधी-सी बात भी हम न समझ सके! अब हमने शुद्ध स्वदेशीका व्रत लिया और हाथ-कती हाथ-बुनी खादी ही काममें लेने लगे।

अिस प्रकार बहुत वर्षों तक शुद्ध स्वदेशी खादी चली। बहुत लोग कातने-पीजने और हाथका सूत बुननेमें होशियार हो गये। बहुतसे किसान घरका कपास रखकर और घरमें सूत कातकर वस्त्र-स्वावलम्बी बने। अत्यन्त गरीब लोग मजदूरी लेकर कातने लगे। चरखेमें सुधार हुअे। छोटा, सुन्दर, दो चक्रवाला और पेटीमें समा जानेवाला चरखा चक्र खोजा गया। खादी भी तरह तरहकी और अनेक डिजाअिनोंकी बनने लगी। शहरोंमें बड़े-बड़े खादी-भण्डार खुले और कलाके महान अुपासकोंकी आंखोंको सन्तोष देनेवाली सुन्दर और मिलोंकी स्पर्धामें पीछे न रहनेवाली खादी वहां बिकने लगी।

अच्छे अच्छे खादी-सेवक अभिमानके साथ बधाअी पाते थे "देखिये, अब खादी कैसी बढ़िया बनती है! और पहलेसे सस्ती भी होने लगी है।" परन्तु महात्मा गांधीकी नजर हमेशा चरखा कातनेवाली झोंपड़ीवासी बहनों पर ही रहती थी। अुन्हें शंका हुअी, "खादी सस्ती कैसे हुअी? कातनेवालोंके बलिदान और खर्च पर तो सस्ती नहीं हो रही है?" हिसाब लगाया गया तो सन्देह सही निकला। अुन्हें कातनेकी मजदूरीका पूरा अेक आना रोज भी नहीं मिलता था। खादी-सेवकोंको अपने अज्ञान और अति-अुत्साहमें वह अन्याय, जो वे स्वयं गरीब कत्तिनोंके साथ कर रहे थे, दिखाअी नहीं देता था। अुन्हें नहीं सूझता था कि यह तो कत्तिनोंकी कंगाल दीन दशाका अनुचित लाभ अुठाना कहा जायगा। अुस समयसे हमारे स्वदेशी धर्ममें यह सिद्धान्त दाखिल हुआ कि कताअी बुनाअीके काम करनेवालोंको निर्वाह-वेतनसे कम देकर काम कराना पाप है। निर्वाह-वेतनकी दर देकर तैयार हुअी खादी ही सच्ची खादी है, वही प्रमाणित खादी है; अुससे कम दर पर बनी हुअी खादी हाथ-कती और हाथ-बुनी हो तो भी सच्ची स्वदेशी खादी नहीं मानी जा सकती।

अिस प्रकार ५०-६० वर्षोंके अनुभवके बाद हम अिस बातकी खोज कर सके हैं कि हमारे लिअे असली स्वदेशी वस्त्र कौनसा है। पहले तो हम [illegible]

दूसरे विदेशोंकी तरफ मुड़े। अुसके बाद स्वदेशी कारखानोंके पीछे लगे और स्वदेशी-व्रत पालनेके अभिमानका हमने पोषण किया। पर बादमें वह स्वदेशी भी हमें मैला लगा और हाथ-कती हाथ-बुनी खादी पहननेको ही हमने शुद्ध स्वदेशी धर्म समझा। और अन्तमें खादीमें भी निर्वाह-वेतन देकर निर्दोष बनी हुअी शुद्ध प्रमाणित खादी पर हम आ गये। आज हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि हमारे लोगोंको शुद्ध सच्चा सौ फी सदी स्वदेशी वस्त्र ढूंढ़नेमें कितना लम्बा अरसा लग गया! परन्तु अब असली चीज हाथ लगी है, अिसे परमेश्वरका बड़ा अुपकार मानें और दुबारा चाहे जैसे कपड़ेसे शरीरको ढंक कर विचारहीन जीवनमें न अुतरें।

प्रवचन २८

सभ्यताके पाश

हम पिछले तीन दिनोंसे अपने जीवनकी दूसरे नम्बरकी आवश्यकता — कपड़े — के प्रश्नकी खूब छानबीन कर रहे हैं। हमने कपड़ेके दर्जीके टांके तोड़ डाले हैं और जुलाहेके ताने-बाने भी अुखाड़ दिये हैं, परन्तु अभी चरखेका बल निकालकर तथा रुअीके तन्तु अलग करके छानबीन करना बाकी है।

अब तक हमने यह मानकर विचार किया कि कपड़ा जीवनकी दूसरे नम्बरकी सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है, परन्तु आज हम मूलमें ही कुठाराघात करेंगे। कपड़ा क्या सचमुच जीवनकी आवश्यकता है? जिस अर्थमें अन्न जीवनकी आवश्यकता है, अुस अर्थमें क्या कपड़ा आवश्यक माना जा सकता है? अन्नके बिना तो हम शरीरको कायम ही नहीं रख सकते। क्या कपड़े न पहननेसे शरीरके नष्ट हो जानेका खतरा है?

"दुनियाकी सब सभ्य प्रजायें कपड़े पहनती हैं और युगोंसे पहनती चली आयी है। और जंगली मानी जानेवाली जातियां भी चमड़े और पेड़ोंकी छालसे अपने शरीर ढंकती हैं" — यों कहकर अिस प्रश्नको अुड़ा देना ठीक नहीं। "कपड़े न पहने तो क्या हम नंगे फिरें?" अिस तरह अुलटा प्रश्न करके बातको हंसीमें टाल देना भी अुचित नहीं है। हम सत्य-शोधक हों तो कपड़ेका अिस दृष्टिसे विचार करनेसे हमें डरना नहीं चाहिये। आश्रमवासियोंमें सत्य-शोधनकी अदम्य वृत्ति न हो तो अुनका आश्रमवास और अुनकी आश्रमी शिक्षा लज्जित ही होगी।

मैं समझता हूं कि हम यह तो नहीं मानते कि कपड़े न पहननेसे हम मर जायंगे। यह बात सही है कि मां-बापने हमें छुटपनसे कपड़ोंमें लपेटा है और हमारी प्रजाको सैकड़ों पीढ़ियोंसे कपड़े अिस्तेमाल करनेकी आदत पड़ गअी है; अिसलिअे अब हमारी चमड़ी नाजुक हो गअी है, वह सर्दी-गर्मी सहन नहीं कर सकती और कपड़े न पहनें तो हमें अेक प्रकारकी बेचैनी मालूम होती है। शायद हम बीमार भी हो जायं। अिस अनुभवसे तो हमें वास्तवमें सावधान हो जाना चाहिये। वह हमें अिस विचारमें

डाल देता है, "क्या हमें चमड़ीकी सहनशक्तिको दुर्बल बना देनेवाला कपडे पहननेका रिवाज कायम रखना है? आजतककी आदतके कारण हमने सहनशक्ति और तन्दुरुस्ती कुछ कम गवाओ है? अिस आदतको कायम रखकर हमें और किस हद तक शरीरको बिगाड़ना है?"

हम आसपास नजर डालेंगे तो कुछ अैसे बीमार भी हमारे देखनेमें आयगे, जिन्हें गरमीकी रात्रि और अुषाकी मधुरता भी सहन नही होती। गरमीमें भी रजाओ न ओढे तब तक अुन्हें नीद नही आती। अगर हम न चेते और अिसी तरह पहनने-ओढनेकी आदत बढाते रहे, तो अन्तमें सभी लोग अितने बीमार बन जायेंगे, अिसमें जरा भी शक नही।

दूसरी तरफ, अपने देशकी तथा दुनियाके दूसरे भागोंमें बसनेवाली जगली जातियोंको देखते हैं तो वे सभ्य लोगोंके मुकाबलेमें करीब करीब बिना वस्त्रके ही रहती हैं। अिस कारणसे अुनके शरीरोकी सहनशक्ति सभ्य लोगोंकी सहनशक्तिकी अपेक्षा कितनी ज्यादा है? वे सर्दीमें भी सिर्फ लगोटीसे काम चला सकते हैं।

शरीरकी रचना ही औीश्वरने अैसी की है कि अुसकी शक्तियां हम अच्छी आदतोंसे बढ़ा सकते हैं, और बुरी आदतोंसे घटा सकते हैं। तो फिर हम कपडा पहनने वगैराकी जो आदतें डालें, जो भी रिवाज चलायें, वे अैसे ही होने चाहिये जिनसे दिनोदिन हमारे शरीर अधिक तन्दुरुस्त और अधिक सुदृढ़ बने। अुसके बजाय हमारा आज अुलटी ही दिशामें जा रहा है। प्रजा जितनी ज्यादा सभ्य होगी, अुतने ही ज्यादा कपडे पहनती दिखाओ देगी। जगली जातियां भी कपड़ोंको सभ्यताका लक्षण मानकर जब सभ्यताकी नकल करने लगती है, तब कपड़ेका भार शरीर पर ज्यादासे ज्यादा लादने लगती हैं।

हिन्दुस्तानमें हम अेक-दो सदियों पहले आजके जितने कपडे नही पहनते थे। हम कोओी जगली प्रजा नही थे। ठेठ वैदिक कालसे हमें कपड़े बुननेकी कला आती है। फिर भी हमारे लोग शरीरका बड़ा भाग खुला ही रखते थे। धोती पहनते थे, परन्तु वह आजके जैसी लम्बी-चौडी नही होती थी। शरीर पर दुपट्टा ही डाल लेते थे और सिर पर कुछ लपेट लेते थे। यह हमारे सद्गृहस्थोंकी पोशाक थी।

अजन्ताकी गुफाओं जैसे स्थानोंके पुराने चित्र देखनेसे पता चलता है कि बड़े-बड़े राजा और धीमान भी अिससे अधिक कपड़े नही पहनते थे। स्त्रियां भी आज पहलेसे बहुत ज्यादा कपड़े शरीर पर लपेटने लगी हैं। हम भले ही मनमें खुश हो कि हम पुराने लोगोंकी अपेक्षा ज्यादा सभ्य हो गये है, परन्तु सीधी नजरसे देखें तो हमारी अिस स्थितिमें खुश होने जैसी कोओी बात नहीं है। अुलटी शरमानेकी बात है। क्योंकि हमने पूर्वजोंकी अपेक्षा अपने शरीरकी चमड़ीको अधिक कमजोर बना लिया है।

हमारे सभ्य लोगोंके कपड़े पहननेके रीति-रिवाजको देखकर सचमुच मनमें अेक बड़ी शंका पैदा होती है। हम मुहसे जरूर कहते हैं कि कपड़े शरीरकी रक्षाके लिअे पहनते हैं, परन्तु अुन्हें पहननेका हमारा हेतु केवल रक्षाका ही नहीं मालूम होता; हमारे

मनमें कोअी दूसरा हेतु भी छिपा जान पड़ता है। हम अधिकांश कपड़े तो शरीरको आवश्यकता हो या न हो, 'सभ्यताके खातिर' ही पहनते हैं। पगड़ी, साफा और टोपीको ही लीजिये। धूप और चोटसे सिरकी रक्षा करनेका हेतु अुसमें जरूर है, परन्तु जब दफ्तर या पाठशालामें नंगे सिर प्रवेश करनेकी मनाही की जाती है तब मनाही करने-वालेके मनमें यह बात नहीं होती कि नंगे सिर आओगे तो तुम्हारे दिमागमें गरमी चढ़ जायगी या तुम्हारा सिर किसीके प्रहारसे फूट जायगा। मनाहीका स्पष्ट अर्थ अितना ही है कि यहां सभ्य लोगोंको ही आनेकी अिजाजत है; सिर खुला रखकर घूमना जंगलीपनकी निशानी है और अैसे जंगली लोगोंके साथ हम शरीक होना नहीं चाहते। किसान खेतमें जाते समय सिर पर फेंटा लपेटता है सो तो धूपसे सिरकी रक्षा करनेके लिअे लपेटता है। परन्तु जब हम बाजारमें जाते समय पगड़ी लगाते हैं, तब हमारे मनमें रक्षाकी अपेक्षा सभ्यताका विचार ही मुख्य होता है। गोरोंके देशमें खुली छाती रखकर और पैरोंमें मोजे पहने बिना कोअी शहरके बीचसे निकले, तो वहांकी रमणियां 'अररर' कहकर आंखें बन्द कर लेती हैं; और रास्ते पर खड़ा पुलिसमैन अुसे असभ्य और जंगली जानवर मानकर पकड़ लेता है। अिसके पीछे भाव यह नहीं है कि अुसकी छाती या पैरोंमें ठंड लग जायगी, बल्कि यह है कि अुसने सभ्यताके लिअे जरूरी माने गये कपड़े नहीं पहने। हमारे देशकी आबहवा गरम है, फिर भी कुछ समय पहले तक हमें सभ्योंमें गिनती करानेके लिअे कुर्ता और मोटे कपड़ेका सिला हुआ तथा सब बटन बराबर बन्द किया हुआ कोट पहनना पड़ता था। खुशकिस्मतीसे महात्मा गांधीके पथप्रदर्शनके कारण 'सभ्यता'के अिस जुल्मसे हम कुछ बच गये हैं।

हम कपड़ोंके जंजालसे बिलकुल बचनेका विचार आज भले न करें, परन्तु अिस सभ्यताके जुल्मसे तो अवश्य बचें। सभ्यताकी हमारी कल्पनाअें तो अन्तमें हमारी अपनी ही बनाअी हुअी हैं। गांवके लोग शहरी अमीरोंको सभ्य मानते हैं; और अुनके कपड़े-लत्तों वगैराके रीति-रिवाजोंको सभ्यताकी निशानी समझकर अुनका अनु-करण करते हैं। परन्तु वास्तवमें अिससे क्या वे सभ्य हो गये? अुलटे वे कमजोर पगड़ीवाले ही बने और अूपरसे पैसेके खर्चमें पड़ गये।

पोशाक शरीर-रक्षाका अपना मूल हेतु छोड़कर सभ्यताका दिखावा करनेका साधन बन गअी, अिसलिअे अक्सर वह बहुत ही विचित्र और बेढंगी भी बन जाती है। जैसे जैसे सभ्यताके फैशन बदलते हैं, वैसे वैसे पोशाक भी बदलती है। और फैशन तो आकाशकी बदली अथवा मनकी तरंगकी तरह है। वह कब कैसा रूप लेगा और [illegible] में चला जायगा, यह कौन कह सकता है? बहुत बार तो हम यही [illegible] हैं कि अुसमें रक्षाके गुण जितने कम हों अुतनी अधिक सभ्यता है!

[illegible] जमानेमें सिर पर लम्बा फेंटा लपेटनेका रिवाज था और आज [illegible] लोग अुसे अिस्तेमाल करते हैं। यह फेंटा रक्षाकी दृष्टिसे अुत्तम

है, शिरस्त्राणके नामको सार्थक करनेवाला है। अुसका प्रथम गुण यह है कि धूपमें अुससे सिरमें पसीना आकर ठंडक हो जाती है। दूसरा गुण चोट झेलनेका है; अिस दृष्टिसे भी वह अुत्तम है। समय समय पर धोकर साफ रखनेकी सुविधा भी अुसमें अच्छी है। यह तीसरा गुण है। चौथा गुण यह है कि कामकाज करते समय वह गिर नहीं पड़ता। लटकता अथवा सरकता रहकर असुविधा पैदा नहीं करता। पांचवां गुण यह है कि जरूरत पड़ने पर वह दूसरे कामोंमें, गेंडुरीके तौर पर सिर पर बोझा अुठानेमें, चादरके तौर पर ओढ़नेमें और झोलीके तौर पर कुछ बांधनेमें अुपयोगी हो सकता है। छठा गुण अुसमें किफायतकी दृष्टिसे है, क्योंकि वह फटता है तब भी अुसमें से कपड़ेके बहुत अच्छे टुकड़े निकलते हैं, जो दूसरे कामोंमें भलीभांति आ सकते हैं। अन्तिम और सातवां गुण यह है कि अुसे पहनकर हम अच्छे और भव्य दिखाओ देते हैं।

अब अिस फेंटेके साथ हमारे यहां सभ्य जन कल तक जो तरह तरहकी पगड़ियां पहनते थे अुनकी तुलना कीजिये। क्या अुसकी रचनामें अुपरोक्त गुणोंमें से अेक भी गुण न रहने देनेका ही स्पष्ट अुद्देश्य नहीं मालूम होता? अहमदाबादी पगड़ी, पटेलिया पगड़ी या अैसी ही अन्य पगड़ियां तैयार करनेवालोंके मनमें क्या क्या कल्पनायें होंगी? धूपसे वे जरा भी रक्षा करती हैं अथवा मार सहनेमें मदद देती हैं, यह आक्षेप तो अुन पर बिलकुल नहीं किया जा सकेगा। धोनेके मामलेमें तो फेंटेमें जो झंझट थी अुससे बचनेके लिअे ही यह स्थायी पगड़ी बनाओ गओ मालूम होती है। सद्गृहस्थके सिर पर चढ़कर बैठी हुओ पगड़ी मानो अभिमानसे यह भाषण देती है "मुझे पहननेवाला आदमी धूपमें कुदाली चलानेवाला और सिर पर भार अुठानेवाला मजदूर नहीं है; वह अैसा बड़ा आदमी है जो दिनभर दीवानखानेमें छपरखट पर पड़ा रहता है। कभी बाहर निकलता है तो जंगलियोंकी तरह नहीं चलता। विवेकके साथ धीरे धीरे चलता है, जिससे पगड़ी गिर जानेका अुसे डर नहीं रहता। वह धूपसे बचनेके लिअे सिर पर बोझा नहीं रखता, परन्तु छत्र धारण करनेवाले नौकर रखता है। दुश्मनसे बचनेके लिअे वह सिर पर भारी फेंटा नहीं बांधता परन्तु हथियारबन्द अंगरक्षक रखता है। मुझे पहननेवाला अैसा देहाती नहीं जो रोज रोज फेंटा धोने और बांधनेकी झंझटमें पड़े। वह अितना अुक्खड़ नहीं कि पगड़ी पुरानी हो जानेके बाद अुसके दूसरे अुपयोग करनेका क्षुद्र विचार अुसके मनमें आये। ये पगड़ियां देखकर दुनिया हंसती है और अुन्हें कलाहीन और बेडौल कहती है। परन्तु अिससे क्या? क्या बड़े बड़े कुलीन राजा-नवाब अैसी ही पगड़ियां नहीं पहनते थे?"

आज सभ्य कहलानेवाले लोगोंकी अर्थात् हमारी श्रेणीके स्त्री-पुरुष दोनोंकी पोशाकके फैशन देखें तो अुनमें तरह तरहकी हमने लादक विचित्रतायें, सुभीता बिलकुल बचाव और फैशनके खातिर मोल ली हुओ असुविधायें नजर आये बिना नहीं रहेंगी — हां, हममें अपनी ही हंसी अुड़ाने जितनी विनोद-वृत्ति होनी चाहिये!

पाटकी दावोंके दिखावे क्या जरूरत है? फिर भी हम अुन पहन कर भूल न गये या सभ्यता-देवी हममें गुप्त बैठी हो? और ढकके दिखावे ...

भागको रक्षाकी आवश्यकता है तो वह छातीको है। फिर भी कोट और जाकेट हम अिस ढंगसे पहनते हैं कि ठीक वही भाग खुला रहता है। सर्दी सहन करना बेहतर है, मगर देहातीमें गिनती नहीं कराअी जा सकती! बहनें भी हाथ, गला, छाती वगैरा जितने भाग फैशन देवताकी आज्ञानुसार खुले रखना जरूरी हो अुतने खुले रखनेके लिअे ठंडसे कांपनेको तैयार हो जाती है।

पुराने फैशनके अनुसार हम धोतीधारी होते हैं, तो फैशनका अनुसरण करके अुसे पैरोंमें आने तक घिसटती रखनेकी खास तौर पर सावधानी रखते हैं। हमारी धोती खुद दुनियाके सामने यह घोषित करती है कि हम छोटी और मोटी धोती पहननेवाले किसान या मजदूर नहीं हैं।

बहनोंने भी साडी वगैरा कपड़ोंका ढंग और अुन्हें पहननेकी पद्धतियां अैसी खोज निकाली हैं कि पहननेके बाद सभ्यता-भंगकी भूल होना संभव ही नहीं। किसीको काम-काज करनेकी 'पापी' अिच्छा हो तो भी अुसके हाथ-पैर कपड़ोंमें फंस जायं, कोअी जल्दी चलनेका जंगलीपन करने लगे तो अुनमें फंसकर गिर पड़े। अुनमें अैसी सुरक्षाकी व्यवस्थाअें रखी गअी हैं! फिर किसीके पेटकी भूख जोर लगाकर अुस सभ्यतासे अुसे दूर हटा दे और मजदूरी करनेको मजबूर कर दे, तो अुसे घेरदार घाघरेका कच्छ बनाना पड़ेगा और लटकती हुअी साडीको निकालकर अुसे सिर पर लपेटना होगा, अर्थात् अिस सारी 'कलामय' पोशाककी मूल योजनाको बिलकुल ही निष्फल बना देना पड़ेगा।

खादीधारी नवयुवकोंमें नयेसे नया फैशन पायजामेका है। अिस फैशनके शुरू शुरूके दिनोंमें अुसके भक्त बहुत ही 'शर्मनाक' बहाने बनाते थे, जैसे कि कपड़ेकी किफायत करनेके लिअे धोतीके बजाय अुसे स्थान दिया गया है; भागदौड़में और काम-काजमें सुविधा होनेके लिअे अुसकी खोज हुअी है। परन्तु भक्त लोग समय रहते सचेत हो गये हैं और अपने पायजामेमें लगभग धोती जितना कपड़ा काममें लाने लगे हैं। अुन्होंने अुसे अितना चौडा और पैरोंमें फंसने लायक नीचा बना दिया है कि वह मेहनत-मजदूरीसे दूर रहनेवाले सभ्य लोगोंके जीवनको शोभा दे सके। अिस पिछली बातमें तो धोतीकी अपेक्षा पायजामेको बिना खतरेवाला बनानेमें अुन्होंने ज्यादा सफलता प्राप्त की है; क्योंकि धोतीका तो अैन वक्त पर कच्छ भी बनाया जा सकता है, लेकिन पायजामा तो किसी भी करामातसे छोटा किया ही नहीं जा सकता! यह मानना पड़ेगा कि दर्जीने अपनी कुशलता काममें लेकर अिस मामलेमें अच्छी मदद की है।

सचमुच पोशाकके विषयमें दर्जीकी कलाका विचार कर लेने जैसा है। अुसने दाम लेकर हमारी सुख-सुविधामें वृद्धि की है या दुःख और असुविधामें? सच पूछें तो दर्जीका अिसमें कोअी दोष नहीं मालूम होता। अुसने तो जिस अुद्देश्यसे हमने अुसकी सेवा ली है अुस अुद्देश्यको सुन्दर ढंगसे पूरा कर दिया है। दर्जीके पास जानेका हमारा मूल हेतु यह रहा होगा कि कपड़ा शरीर पर चिपका रहे और लटकता या ढीला रहकर कामकाज या चलने-फिरनेमें बाधक न बने। यह भी माना जा सकता

है कि शुरूमें कपड़ेकी किफायतका हेतु भी अिसके पीछे रहा होगा। अुदाहरणार्थ, अलग चादर ओढ़नेसे मिले हुअे कुर्तेमें कम कपड़ा लगता है।

परन्तु ये मूल हेतु तो अुस समयके हुअे जब हम और हमारा दर्जी दोनों जंगली थे। आज तो हम दोनों सभ्यताके शिखर पर पहुंच गये हैं, फैशनके अुपासक बन गये हैं और अुनके लिअे सुख-सुविधा या किफायतका बलिदान करनेका सार्वजनिक साहस अपनेमें पैदा कर चुके हैं! आज पुरुषोंके कोट, पतलून, कमीज, पायजामे, टोपियां, पगड़ियां आदिका नाप देनेमें और स्त्रियोंके लहंगे, पोलके, फ्रॉक वगैराका नाप देनेमें अधिक चिन्ता हम किस बातकी रखते हैं? शरीरके अमुक भागको रक्षाकी अधिक आवश्यकता है, अिसलिअे वहां कपड़ेका आवरण अधिक रखनेकी? हरगिज नहीं। फैशनके अनुसार किस जगह कितना कपड़ा लटकता रखना चाहिये और कहांसे कितना जरूरी कपड़ा काट देना चाहिये, अिसीकी चिन्ता की जाती है। अिस सिद्धान्तके अनुसार ही हमारे कोट वगैरामें छातीका भाग काटकर कमरके नीचे घेर रखा जाता है। बहनोंके पोलको वगैरामें भी झालर रखनेकी और फैशनके अनुसार अमुक भाग लंबे-छोटे बनानेकी ही चिन्ता रखी जाती है।

प्रवचन २९

सच्ची पोशाककी खोज

कल आपने कपड़ोंके फैशनके बारेमें विचार सुने। अुन परसे आप मुश्किलमें पड़ गये होंगे। आपके मनमें प्रश्न अुठा होगा कि "तब हम कपड़े किस ढंगके पहनें?" आप मुझसे अैसी कोअी सीधी सलाह पानेकी आशा न रखें कि अितने कपड़े पहनिये और अैसे कपड़े पहनिये। यह आपको अपने-आप ढूंढ़ लेना है। परन्तु हम जो विचार कर चुके हैं, अुनमें हम कपड़ोंके बारेमें कुछ सिद्धान्त जरूर निकाल सकते हैं

(१) यह अंधविश्वास मिटा दिया जाय कि कपड़े पहननेमें सभ्यता है और शरीर खुला रखनेमें जंगलीपन है।

(२) कपड़े पहनकर शरीरको नाजुक बना डालनेकी अपेक्षा अुसे खुला रखकर कसरतकी सहनशक्ति बढ़ाना ही अधिक आरोग्यवर्धक है।

(३) पीढ़ियोंकी कपड़ोंकी आदतसे सहनशक्ति जो घटनेके कारण कपड़ोंका सर्वथा त्याग करनेसे हम बीमार हो जाते हैं, अिसलिअे छाती वगैरा मार्मिक भागोंकी रक्षा करनेके लिअे जरूरी हो अुतने ही कपड़े पहने जाय।

(४) जो कपड़े हम आज केवल सभ्यता या फैशनके खातिर पहनते हैं वे तो तुरन्त छोड़ दिये जाय। जितने कपड़े रखनेका निश्चय कर लें अुनमें भी शुद्ध और अनुकूल हो तब अितने कपड़ोंके बिना काम चल सकता हो चला लें।

आदिवासी स्त्रियोंका सयानापन सीखेंगी — अर्थात् पूरी साड़ीके बजाय दो अलग अलग टुकड़े काममें लेंगी; और मेरा तो खयाल है कि अेक टुकड़ा अूपरके भागमें और दूसरा नीचेके भागमें पहनना पसन्द करेंगी।

अैसी अैसी और कल्पनाअें अब आप खुद ही कर लीजिये। सत्य पर डटे रहकर साहसपूर्ण कल्पनाअें तो करने लगिये। अुसीमें से सुधारों पर अमल करनेकी हिम्मत भी आपमें आ जायगी।

दुनियामें सब जगह दो स्वभावके लोग पाये जाते हैं। कुछ सीधे रास्ते चलनेवाले सादे लोग होते हैं और कुछ साहसवाले चिन्तक और शोधक लोग होते हैं। हम आश्रमवासियों या सेवकोंमें भी अिन दो स्वभावोंका होना स्वाभाविक है। हममें अेक वर्ग अैसा है, जो अपने हिस्से आये हुअे काममें चौबीसों घंटे तल्लीन रहता है। क्या खाना-पीना और क्या पहनना-ओढ़ना, अिसमें वे बहुत गहरे नहीं अुतरते। आम तौर पर लोगोंमें खादीके कपड़े पहननेका जो रिवाज प्रचलित हो अुनके अनुसार कपड़े पहन कर और थालीमें जो आ जाय वही सादा भोजन खाकर वे काममें लग जाते हैं। परन्तु दूसरा वर्ग हममें चिन्तकोंका होता है, और होना भी चाहिये। अुनका शौक दूसरे लोगोंकी तरह नित-नये फैशन निकाल कर नये नये रूप बनानेका नहीं होना, परन्तु आज हमने जो विचार किये हैं अुस दिशामें कुछ प्रयोग करनेका होता है। किसी किसी आश्रमवासीका वेश और व्यवहार लोगोंकी नजरमें कभी बार विचित्र और हास्यास्पद क्यों लगते हैं, अिसका रहस्य अब आप समझ सकेंगे। हमारे देशकी आबहवा, धंधे, स्वभाव और हमारे लोगों द्वारा विकसित जीवन-ध्येय — अिन सबको ध्यानमें रखते हुअे मुझे लगता है कि हमारे पुरुषों और स्त्रियोंकी, हमारे लड़कों और लड़कियोंकी, राष्ट्रीय पोशाक कैसी होनी चाहिये, यह किसी दिन अैसे विचित्र लोगोंके प्रयोगोंसे ही निश्चित होगा।

ग्यारहवाँ विभाग : आत्मबल

प्रवचन — ६५ : सार्वजनिक जीवनमें सिद्धान्त हो सकते हैं ?; ६६ 'नीतिके रूपमें'; ६७ : हमारे सेनापति; ६८ : सत्यमें कौनसा बल है ?; ६९ : अहिंसामें कौनसा चमत्कार है ?; ७० : अुससे स्वराज्य मिलेगा ?; ७१ : हम क्यों जीतते और क्यों हारते हैं ?

बारहवाँ विभाग : आश्रमी शिक्षाका अभ्यासक्रम (अेकादश व्रत)

प्रवचन — ७२ : आत्म-रचनाकी बुनियाद (सत्य-अहिंसा); ७३ आत्म-रचनाकी अिमारत [१. धन्धोंमें सिद्धान्त (अस्तेय), २. सुख-सुविधाओंमें सिद्धान्त (अपरिग्रह) ३. व्यक्तिगतसे व्यक्तिगत जीवनमें भी सिद्धान्त (ब्रह्मचर्य), ४ भोग-विलास पर संयम (शरीर-श्रम), ५. आत्म-रचनाका 'बायें-दाहिने' (अस्वाद), ६ लड़ाका सत्याग्रह (अभय), ७. विशाल स्वदेशी, ८. अूच-नीच-भेदका जहर (अस्पृश्यता-निवारण), ९ सच्ची धार्मिकता (सर्वधर्म-समभाव)]; ७४ : आत्म-रचनाके विविध फल, ७५ आत्म-रचनाकी शाला — आश्रम; ७६ : स्वराज्य-आश्रम

फलश्रुति : नयी संस्कृतिकी पुरानी बुनियाद — लेखक : काकासाहब कालेलकर।